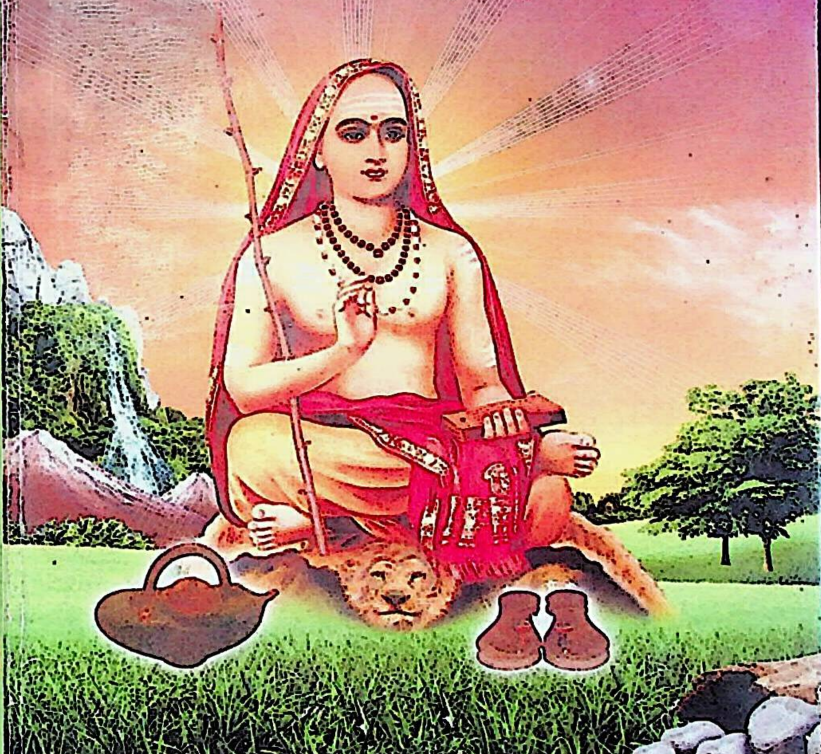
शङ्कर-पञ्चदशी

(श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य के पन्द्रह स्तोत्रों का काव्यानुवाद अंग्रेजी अनुवाद सहित)



रचयिता

डॉ. मृदुल कीर्ति



शाङ्कर-पञ्चदशी

(श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी के पन्द्रह स्तोत्रों का काव्यानुवाद अंग्रेजी अर्थ सहित)

रचयिता

डॉ. मृदुल कीर्ति

प्रकाशक

ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय

के लिए **स्वामिश्रीः न्यासः**, काशी द्वारा प्रकाशित

शाङ्कर-पञ्चदशी

(श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी के पन्द्रह स्तोत्रों का काव्यानुवाद अंग्रेजी अर्थ सहित)

रचयिता

डॉ. मृदुल कीर्ति

प्रकाशक

ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय के लिए

स्वामिश्रीः न्यासः, काशी द्वारा प्रकाशित

कार्यालय - श्रीविद्यामठ बी. 6/98, केदारघाट, वाराणसी - 221001

उत्तर प्रदेश (भारत)

 ISBN : 978-81-928709-0-8

विमोचन तिथि - महाशिवरात्रि संवत् २०७० विक्रमी

मूल्य - प्रकाशनालय हेतु सहयोग राशि यथाशक्ति *

मुद्रक - श्रीमाता आफसेट्स नगवा, वाराणसी (उ.प्र.)

---

* नोट — ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय एवं उसकी सेवा में रत 'स्वामिश्रीः न्यासः' कोई व्यापारिक संस्था नहीं है अतः हम पुस्तक बेचते नहीं, पर लोगों तक पहुँचाने की सदिच्छा रखते हैं। अतः प्रकाशन के लिए पाठकों द्वारा स्वेच्छा से प्रदत्त राशि को प्रकाशन के मद में ही सुरक्षित रखते और उससे ही प्रकाशन कार्य करते हैं।



स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

शुभाशंसा

शास्त्रों के अनुसार सभी शरीरों में एक ही आत्मा का निवास है। आत्मा में स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक का भेद नहीं है । कहा गया है —

नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंसकः ।
यद्यद्शरीरमाधत्ते तेन तेन स उच्यते ।।

भारत में अनेकों ऐसी नारियाँ हुई हैं जो आत्मज्ञान के लिए साधनरत थीं । सभी नारियों के लिए वे ही आदर्श हैं । धर्मशास्त्रों के द्वारा बताए मार्ग पर चलकर ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है । नारियाँ भी इसी मार्ग पर चलकर आत्मसाक्षात्कार करने में सफल हो सकती हैं । यह देह आत्मा नहीं है अपितु आत्मा इससे विलक्षण है । आत्मा का अपना अलग वास्तविक स्वरूप है । अनात्मा में आत्मबुद्धि कर लेना ही बन्धन है और इससे मुक्ति ही मुक्ति है । अपने लौकिक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए इस बन्धन से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए ।

डॉ. मृदुल कीर्ति जी द्वारा प्रस्तुत **'शाङ्कर-पञ्चदशी'** ग्रन्थ के लिए अनेक आशीर्वाद ।

(स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती)

शाङ्कर-पञ्चदशी

(श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी के पन्द्रह स्तोत्रों का काव्यानुवाद अंग्रेजी अर्थ सहित)

रचयिता

डॉ. मृदुल कीर्ति

प्रकाशक

ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय के लिए

स्वामिश्रीः न्यासः, काशी द्वारा प्रकाशित

कार्यालय - श्रीविद्यामठ बी. 6/98, केदारघाट, वाराणसी - 221001

उत्तर प्रदेश (भारत)

 ISBN : 978-81-928709-0-8

विमोचन तिथि - महाशिवरात्रि संवत् २०७० विक्रमी

मूल्य - प्रकाशनालय हेतु सहयोग राशि यथाशक्ति *

मुद्रक - श्रीमाता आफसेट्स नगवा, वाराणसी (उ.प्र.)

---

* नोट — ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय एवं उसकी सेवा में रत 'स्वामिश्रीः न्यासः' कोई व्यापारिक संस्था नहीं है अतः हम पुस्तक बेचते नहीं, पर लोगों तक पहुँचाने की सदिच्छा रखते हैं। अतः प्रकाशन के लिए पाठकों द्वारा स्वेच्छा से प्रदत्त राशि को प्रकाशन के मद में ही सुरक्षित रखते और उससे ही प्रकाशन कार्य करते हैं।



स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

शुभाशंसा

शास्त्रों के अनुसार सभी शरीरों में एक ही आत्मा का निवास है। आत्मा में स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक का भेद नहीं है । कहा गया है —

नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंसकः ।
यद्यद्शरीरमाधत्ते तेन तेन स उच्यते ।।

भारत में अनेकों ऐसी नारियाँ हुई हैं जो आत्मज्ञान के लिए साधनरत थीं । सभी नारियों के लिए वे ही आदर्श हैं । धर्मशास्त्रों के द्वारा बताए मार्ग पर चलकर ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है । नारियाँ भी इसी मार्ग पर चलकर आत्मसाक्षात्कार करने में सफल हो सकती हैं । यह देह आत्मा नहीं है अपितु आत्मा इससे विलक्षण है । आत्मा का अपना अलग वास्तविक स्वरूप है । अनात्मा में आत्मबुद्धि कर लेना ही बन्धन है और इससे मुक्ति ही मुक्ति है । अपने लौकिक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए इस बन्धन से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए ।

डॉ. मृदुल कीर्ति जी द्वारा प्रस्तुत **'शाङ्कर-पञ्चदशी'** ग्रन्थ के लिए अनेक आशीर्वाद ।

स्वरूपानन्द सरस्वती

(स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती)

'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती

शुभाशंसा

विवेकचूडामणि में भगवत्पाद कहते हैं —

मस्तकन्यस्तभारादेर्दुःखमन्यैर्निवार्यते ।

क्षुधादिकृतदुःखं तु विना स्वेन न केनचित् ।।

अर्थात् सिर पर रखे हुए भार आदि का दुःख अन्यों के द्वारा भी दूर किया जा सकता है किन्तु क्षुधा आदि का दुःख अपने सिवा अन्य किसी से भी दूर नहीं किया जा सकता । जिस प्रकार पुत्र या मित्र के भोजन कर लेने से स्वयं के क्षुधा की निवृत्ति असम्भव है उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वयं ही प्रयत्न करना होता है ।

ऐसे ही रोगी को भी अपने रोग की निवृत्ति के लिए स्वयं ही औषधि का सेवन करना होता है । किसी अन्य के औषधि सेवन से रोगी का रोग दूर नहीं हो सकता । संसार को भी रोग की उपमा दी गई है और इस भवरूपी रोग से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय ज्ञानौषधि ही है ।

वस्तुतः भाषा का मुख्य उद्देश्य सम्प्रेषण ही होता है । यदि मौन में ही हमारे भाव लक्षित व्यक्ति को सम्प्रेषित हो जाएँ तो मौन भी एक भाषा हो जाती है । आदिकवि वाल्मीकि जी की रचना संस्कृत में है परन्तु यह सर्वोत्कृष्ट होते हुए भी आज जन-जन की पहुँच से परे है । केवल संस्कृत के विद्वान् ही रामायण को समझ सकते हैं और उसका आनन्द ले सकते हैं । वहीं हम देखते हैं कि रामचरितमानस जनभाषा में होने से घर-घर में गायी जाती है। कवि मनीषी

'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती

सदा से हर स्तर के लोगों के लिए लेखन करते रहे हैं। कहा गया है कि वेद ही रामायण बनकर सामने आया और रामायण ही रामचरित मानस बनकर आज के समय के लोगों का उपकारक है।

कवियित्री ने भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य की जी संस्कृत रचनाओं का हिन्दी में काव्यानुवाद कर संस्कृत न जानने वालों का उपकार किया है। वे अपने इन काव्यानुवादों के माध्यम से भगवत्पाद की रचनाओं को घर-घर पहुँचाने का प्रयत्न कर रही हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत 'शाङ्कर-पञ्चदशी' ग्रन्थ निश्चित रूप से उन शङ्कराचार्य भक्तों के लिए उपयोगी होगा जो संस्कृत तो नहीं जानते परन्तु सनातनधर्मोद्धारक भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य जी के उपदेशों को पढ व समझकर उसे हृदयंगम करना चाहते हैं।

हम चाहते हैं कि भगवती डॉ. मृदुल कीर्ति जी को भगवत्पाद की समस्त रचनाओं का काव्यानुवाद करने की क्षमता प्रदान करें, इसी शुभ भावना के साथ .....

('स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती)

स्वामिश्रीः-न्यासः
श्रीविद्यामठ, केदार घाट, वाराणसी - 221001 (उ.प्र.)
दूरभाष - 0542-2450520,362 चलभाष - 9670296703 ई-मेल

आभार

इस ग्रन्थ में अंग्रेजी के अनुवाद इण्टरनेट के विभिन्न वेबसाईट्स से प्राप्त लिंक्स से लिए गए हैं। हम उन सभी का आभार व्यक्त करते हैं जिनके अंग्रेजी अनुवादों इस ग्रन्थ में उपयुक्त हुए हैं।

(डॉ. मृदुल कीर्ति)

लेखकीय

ॐ श्री वासुदेवाय नमः

श्रुति स्मृति पुराणानामालयं करुणालयं,
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरं,

हे ! महाशून्य के अंश, नमन मैं एक अकिंचन
पुण्य पूर्व प्रारब्ध कदाचित इस पल सिंचन ।
दिया महत आशीष, दिव्यता की वसु धारा
जैसे मुझको मिला, सृष्टि सृष्टा संसारा

यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है-असम्पृक्त- अवस्था
मेरा किसी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं- असंगावस्था
मुझे कुछ भी नहीं चाहिये- निष्काम अवस्था

यही आध्यात्म के मूल सूत्र और ब्रह्मवाद का सार है, जीव मृण्मय है, ब्रह्म चिन्मय है । सर्वत्र इसी ब्रह्मवाद की पुष्टि आदिगुरु शंकराचार्य ने की है ।

ब्रह्म सत्यं जगन्नमिथ्या..... विवेक चूड़ामणि-२०

अतः

देह, गेह और नेह को, तज तीनन को मोह,
मोह बन्धना मुक्त को, मिलन न होत बिछोह ।

इस तरह -

संबंधों की दुनिया में असम्बन्धों का चिन्तन, परिवार समाज में रहकर एकत्त्व का चिन्तन,सब भोगते हुए भी त्याग का चिन्तन विरोधाभास ही सत्य है और इन्हीं में छुपे शान्ति के सूत्रों को उजागर करने को अवतरित हुए दिव्य विभूति का नाम ही .... श्री आदि गुरु शंकराचार्य है ।

अपने चैतन्य को पहचानो और स्वयं को खाली करो, वृत्तियों को सात्त्विक करते हुए अपने सत् स्वरूप को जानो, क्योंकि तन का भार, मन का भार, चेतना का कोई भार नहीं और जो सात्त्विक और तात्त्विक हैं वे पहले से ही निर्भर हैं । हम स्वयं अनेकों में बँटे हुए हैं । हमारा एक चैतन्य मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में बँटा है । इस बँटने में जीव अपना मूल स्वरूप भूल गया, जबकि जीव -

ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि -विवेक चूड़ामणि

शंकराचार्य का ब्रह्मवाद

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र का भाषा भाष्य, उपनिषदों का भाषा भाष्य, भगवद्गीता का भाषा भाष्य और महती महत्

स्तुति स्तोत्र साहित्य से भारतीय आध्यात्मिक वाङ्मय को जो ऋद्धि, सिद्धि और निधि दी है उसकी तुलना तो दूर, कोई समकक्ष भी नहीं । बत्तीस वर्षों की अल्पायु में अचम्भित कर्मों से समय् के हस्ताक्षर बन गए, कालजयी रचनाओं से कालातीत बन गए । मैं माटी की एक किंकरी, कैसे आदि गुरु शंकराचार्य के स्तुति, स्तोत्र साहित्य और विवेक चूड़ामणि को मूल संस्कृत से काव्य रूपान्तरित करने का साहस कर पाई, इसका उत्तर स्वयं श्री शंकराचार्य जी के पास है क्योंकि यह सूक्ष्म जगत् की प्रक्रिया है -

मैं कछु नैकु न नैकुहि कीन्हां,
प्रतिपालक मोहे आपुहिं दीन्हां ।
सो जो कछु अब परत दिखाई,
सकल परम प्रभु की प्रभुताई ।।

किन्तु स्थूल जगत् में, वह दिव्य कृपा का क्षण था जब देहली के हवाई यात्रा प्रतीक्षालय में पूज्य 'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती से कुछ मिनटों के लिए मिले, ईमेल का आदान-प्रदान किया, तदन्तर फोन पर वार्ता, अनन्तर अनुवादों की बात पूज्य 'स्वामिश्रीः' को भा गयी । बस वहीं से इतने दिव्य प्रयोजन का बीजारोपण हुआ और 'भज गोविन्दम्' का आयोजन हो गया, आत्मबोध घटित हो गया, सात्त्विक आनन्द में लीन हूँ और परम सौभाग्य पुण्य कर्मों का उदय है

कि 'ज्योतिर्मठ-बद्रिकाश्रम-हिमालय' के ही पूज्यपाद अनन्तश्रींविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज द्वारा स्थापित मठ से यह काव्यानुवादित ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है । २० मई २०१३ को अमेरिका से बद्रीनाथ धाम गई थी । श्री बद्रीविशाल से आशीर्वाद लेकर आई, यह उसका भी प्रसाद रूप है । यह प्रसाद है, प्रयास नहीं । कृपासाध्य है, श्रमसाध्य नहीं । इस काव्यात्मक अनुवाद में परमब्रह्म परमात्मा और पूज्य 'स्वामिश्रीः' के साथ उन सभी विज्ञ विद्वानों और ज्ञानियों को विनत भाव से साधुवाद देती हूँ जिनके इंग्लिश के अनुवादों को इसमें सम्मिलित किया गया है जिसका प्रयोजन केवल वैश्वीकरण करना है । जो प्रवासी हिन्दी अधिक नहीं जानते किन्तु जिज्ञासु है वे भी आध्यात्मिकता, सात्त्विकता और दिव्यता का अमृत पान कर सकें । ब्रह्म सत्य ज्ञानस्वरूप और अनन्त है, उसकी सत्ता को भूलते ही 'मैं कर्ता और भोक्ता' हूँ । माया से मोहित होकर नाशवान संसार में चाहना ही यातना बन जाती है ।

चाहती हूँ तृप्ति जग के तप्त इस अंगार में,
एक नन्हें विहग की ऐसी अनोखी प्यास है ।
और भूल जाते हैं कि -
किसका सब कुछ रहा यथावत
सबका सब कुछ हुआ कथावत

काल गाल सर्वस्व समागत
किंचन अथवा दिव्य तथागत
क्योंकि केवल और केवल
ब्रह्म सत्यं जगन्नमिथ्या ।

-डॉ. मृदुल कीर्ति
जनवरी २०१४

समर्पण

सिद्ध ऋषिका सी प्रबुद्धा, शक्ति पावन पावनी ।
त्याग, करुणा, दया, ममता, स्नेह की मन्दाकिनी ।।
कर्त्तव्य वेदी पर स्वयं, जीवन्त समिधा सी जलीं ।
क्षीर देकर, नीर नयनों से, सदा पल-पल पलीं ।।
ब्रह्म में लवलीन सत्ता, ब्रह्म के उस लोक में ।
'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' हर्ष में न न शोक में ।।
ब्रह्म अमृत के सरोवर, मृदुल शुभ 'सरोज' हो ।
दिव्यता की लो प्रसादी, सत समर्पण आज हो ।।

परिचय उन्हें चाहिए जिनकी अहंता गहरे बैठी हो । शुद्ध, बुद्ध और प्रबुद्ध आत्माएँ निष्काम कर्म करते हुए कर्म निर्जरा, प्रारब्ध को एकाग्र और शान्त चित्त से भोग कर पतझड के पत्ते सी काल प्रबञ्जन में उड जाती हैं । ऐसी ही मेरी जीजी 'सरोज' को यह ग्रन्थ समर्पित है ।

-मृदुल कीर्ति
जनवरी २०१४

विषयानुक्रमणिका

चर्पटपञ्जरिका

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।
संप्राप्ते संनिहिते काले न हि न हि रक्षति डुकृञ्करणे ।।१।।

भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढमते !
कवलित काल करे जेहि काले, नियम व्याकरण, क्या करते ?
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।१।।

Worship Govinda, worship Govinda, worship Govinda, Oh fool ! Rules of grammar will not save you at the time of your death.

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ।।२।।

माया जोड़े काया तोड़े, ढेर लगा कब सुख मिलते,
जो भी करम किये थे पहले, उनके ही फल अब फलते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।२।।

Oh fool ! Give up your thrist to amass wealth, devote your mind to thoughts to the Real. Be content with what comes through actions already performed in the past.

नारीस्तनभरनाभीदेशं दृष्ट्वा मा गा मोहावशम् ।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचिन्तय वारं वारम् ।।३।।

नारी तन, मोहित मन मोहा, अंदर माँस नहीं दिखते,
बार-बार सोचो मन मूरख, हाड़ माँस पर क्यूँ बिकते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।३।।

Do not get drowned in delusion by going wild with passions and lust by seeing a woman's navel and chest. These are nothing but a modification of flesh. ail not to remember this again and again in your mind.

नलिनीदलगतजलमतितरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ।।४।।

कमल पात, जल बिंदु न रुकते, अस्थिर दूजे पल बहते,
अहम् ग्रसित अस्थिर संसारा, रोग, शोक, दुःख संग रहते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।४।।

The life of a person is as uncertain as rain drops trembling on a lotus leaf . Know that the whole world remains a prey to disease, ego and grief.

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे वार्त्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ।।५।।

धन अर्जन की क्षमता जबतक, घर परिवार सलग रहते,
जर्जर देह कोई ना पूछे, ना कोई बात, अलग रहते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।५।।

So long as a man is fit and able to support his family, see what affection all those around him show. But no one at home cares to even have a word with him when his body totters due to old age.

यावत्पवनो निवसति देहे तावत्पृच्छति कुशलं गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ।।६।।

जब तक प्राण देह में रहते, घर परिवार लिपट रहते,
प्राण वायु के गमन तदन्तर, वे कब कहाँ निकट रहते ?
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।६।।

When one is alive, his family members enquire kindly about his welfare . But when the soul departs from the body, even his wife runs away in fear of the corpse.

बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीसक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तासक्तः पारे ब्रह्मणि कोऽपि न सक्तः ।।७।।

बाल काल बहु खेल खिलौने, युवा काल नारी रमते,
वृद्ध, रोग, दुःख, क्लेश अनेका, परम ब्रह्म को ना भजते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।७।।

The childhood is lost by attachment to playfulness. Youth is lost by attachment to woman . Old age passes away by thinking over many things. But there is hardly any-one who wants to be lost in parabrahman.

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः ।।८।।

को सुत, कन्त, भार्या, बन्धु, झूठे सब नाते छलते,
जगत रीत अद्भुत, तू किसका, कौन, कहाँ, आये चलते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।८।।

Who is your wife ? Who is your son ? Strange is

this samsAra, the world. Of whom are you ? From where have you come ? Brother, ponder over these truths.

सत्सङ्गत्वे निःसङ्गत्वं निःसङ्गत्वे निर्मोहत्वम् ।
निर्मोहत्वे निश्चलितत्वं निश्चलितत्वे जीवन्मुक्तिः ।।९।।

सत-संगति से निरासक्त मन, मोह चक्र में ना फँसते,
निर्मोही मन जीवन मुक्ति, पथ निर्बाध चलें हँसते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते ! ।।९।।

From satsanga, company of good people, comes non-attachment, from non-attachment comes freedom from delusion, which leads to self-settledness. From self-settledness comes JIvan muktI.

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ।
क्षीणे वित्ते कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ।।१०।।

काम गया यौवन के संगा, नीर सूख नद ना कहते,
धन विहीन परिवार न संगा, जानो जग इसको कहते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१०।।

What good is lust when youth has fled ? What use is a lake which has no water ? Where are the relatives

when wealth is gone ? Where is samsAra, the world, when the Truth is known ?

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ।।११।।

धन, यौवन, मद सब निःसारा, छिनत ना काल निमिष लगते,
मायामय अखिलं संसारा ब्रह्म ज्ञान परमं लभते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।११।।

Do not boast of wealth, friends, and youth. Each one of these are destroyed within a minute by time. Free yourself from the illusion of the world of Maya and attain the timeless Truth.

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ।।१२।।

प्रातः सायं, दिवस और रैना, शिशिर, बसन्ती ऋतु रुचते,
काल प्रभंजन के तिनके, पर वेग चाह के ना रुकते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१२।।

Daylight and darkness, dusk and dawn, winter and

springtime come and go. Time plays and life ebbs away. But the storm of desire never leaves

का ते कान्ताधनगतचिन्ता वातुल किं तव नास्ति नियन्ता ।
त्रिजगति सज्जनसङ्गतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका ।।१३।।

धन पत्नी की चिंता त्यागो, नियति नियंता ही करते,
तीन लोक सत्संग सहायक, जिनसे भव सागर तरते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१३।।

Oh mad man ! Why this engrossment in thoughts of wealth ? Is there no one to guide you ? There is only one thing in three worlds that can save you from the ocean of samsAra, get into the boat of satsanga, company of good people, quickly. Stanza attributed to Padmapada

जटिलो मुण्डी लुञ्छितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढो ह्युदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ।।१४।।

मुंडन, जटा, केश के लुंचन, भगवा विविध विधि धरते,
उदर निमितं करम पसारा, मूढ विलोकें, ना जगते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१४।।

There are many who go with matted locks, many who have clean shaven heads, many whose hairs have been plucked out; some are clothed in orange, yet others in various colors — all just for a livelihood. Seeing truth revealed before them, still the foolish ones see it not. Stanza attributed to Totakacharya.

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।।१५।।

शिथिल अंग, सर केश विहीना, दंतहीन अब ना सजते,
वृद्ध तदपि आबद्ध विमोहा, सार हीन जग ना तजते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१५।।

Strength has left the old man's body; his head has become bald his gums toothless and leaning on crutches . Even then the attachment is strong and he clings firmly to fruitless desires. Stanza attributed to Hastamalaka

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चुबुकसमर्पितजानुः ।
करतलभिक्षस्तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ।।१६।।

उदर हेतु भिक्षान्न, तरु तल, सिकुड़-सिकुड़ बैठा करते,
शीत-ताप सह अपितु, भावना के इंगित नाचा करते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१६।।

Behold there lies the man who sits warming up his body with the fire in front and the sun at the back; at night he curls up the body to keep out of the cold; he eats his beggar's food from the bowl of his hand and sleeps beneath the tree. Still in his heart, he is a wretched puppet at the hands of passions. Stanza attributed to Subodha

कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिं न भजति जन्मशतेन ।।१७।।

दान, पुण्य, व्रत, विविध प्रकारा, गंगा सागर तक चलते,
पर बिन ज्ञान कदापि न मुक्ति, जनम शतं मिटते मिलते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१७।।

One may go to Gangasagar, observe fasts, and give away riches in charity ! Yet, devoid of jnana, nothing can give mukthi even at the end of a hundred births. Stanza attributed to vArtikakAra

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः ।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ।।१८।।

सुर मंदिर तरु मूल निवासा, शैय्या भूतल में करते,
सकल परिग्रह, भोग, त्याग, पर भाव विरागी से तरते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१८।।

Take your residence in a temple or below a tree, wear the deerskin for the dress, and sleep with mother earth as your bed . Give up all attachments and renounce all comforts. Bles sed with such vairgya, could any fail to be content ?

योगरतो वा भोगरतो वा संगरतो वा संगविहीनः ।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं नन्दति नन्दति नन्दत्येव ।।१९।।

योग रतो या भोग रतो या राग विरागों में रहते,
ब्रह्म रमा चित नन्दति-नन्दति, सतत ब्रह्म सुख में बहते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।१९।।

One may take delight in yoga or bhoga, may have attachment or detachment . But only he whose mind steadily delights in Brahman enjoys bliss, no one else. Stanza attributed to anandagiriH

भगवद्गीता किंचिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता ।
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा ।।२०।।

भगवद गीता, किंचित अध्ययन, गंगा जल सेवन करते,
कृष्ण, वंदना वंदन कर्ता, कभी न यम से भी डरते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२०।।

Let a man read but a little from gItA, drink just a drop of water from the ganges, worship but once murAri. He then will have no altercation with Yama. Stanza attributed to dRiDhabhakta.

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे ।।२१।।

पुनरपि जनम, मरण पुनि जठरे, शयनं के क्रम दुःख सहते,
यह संसार जलधि दुस्तारा, श्रीकृष्णं शरणम् महते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२१।।

Born again, death again, again to stay in the mother's womb ! It is indeed hard to cross this boundless ocean of samsAra. Oh Murari ! Redeem me through Thy mercy. Stanza attributed to nityanAtha

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः ।
योगी योगनियोजितचित्तो रमते बालोन्मत्तवदेव ।।२२।।

लंबा चोगा पंथ बुहारे, क्या गुण-दोष शमन करते,
योगी योग नियोजित चित्तो, बालक सम ब्रह्मम रमते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२२।।

There is no shortage of clothing for a monk so long as there are rags cast off the road. Freed from vices and virtues, onward he wanders. One who lives in communion with god enjoys bliss, pure and uncontaminated, like a child and as an intoxicated. Stanza attributed to nityanAtha

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः ।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ।।२३।।

को तुम, को हम, कहाँ से आये, को पितु-मातु न कह सकते?
जंगत असारा, स्वप्न पसारा, क्या स्वप्निल जग रह सकते ?
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२३।।

Who are you ? Who am I ? From where do I come? Who is my mother, who is my father ? Ponder thus, look at everything as essenceless and give up the world as an idle dream. Stanza attributed to surendra.

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम् ।।२४।।

अणु-अणु कण-कण, तुझमें-मुझमें, विष्णु ब्रह्म मय ही रमते,
व्यर्थ, क्रोध, दुर्भाव, विकारा, भव शुभ चितः सम समते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२४।।

In me, in you and in everything, none but the same Vishnu dwells. Your anger and impatience is meaningless. If you wish to attain the status of Vishnu, have samabhAva, equanimity, always. Stanza attributed to medhAtithira.

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ।।२५।।

शत्रु, मित्र, सुत, बन्धु, बान्धवा, द्वेष दुलार परे करते,
अणु-कण कृष्णा! कृष्णा! कृष्णा! भेद विभावों से तरते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२५।।

Waste not your efforts to win the love of or to fight against friend and foe, children and relatives. See yourself in everyone and give up all feelings of duality completely. Stanza attributed to medhAtithira

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ।।२६।।

काम, क्रोध, मद, लोभ, विमोहा, त्याग स्वरूपं में बसते,
आत्म ज्ञान बिन जीव निगोधा, नरक निगोधा में धंसते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२६।।

Give up lust, anger, infatuation, and greed. Ponder over your real nature. Fools are they who are blind to the Self. Cast into hell, they suffer there endlessly.Stanza attributed to bhArativamsha.

गेयं गीतानामसहस्त्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्त्रम् ।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ।।२७।।

गेयं गीता, नाम सहस्त्रं, ध्येयं श्री श्री पति महते,
सज्जन संगा, चित्त प्रसन्ना, दीनन को धन दो कहते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२७।।

Regularly recite from the Gita, meditate on Vishnu in your heart, and chant His thousand glories. Take delight to be with the noble and the holy. Distribute your wealth in charity to the poor and the needy. Stanza attributed to sumatir

सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः ।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ।।२८।।

भोग पिपासा रत जिन लोगा, रोग शोक दारुण सहते,
नश्वर जगत तथापि मूढ़ा, सतत पाप के पथ गहते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२८।।

He who yields to lust for pleasure leaves his body a prey to disease. Though death brings an end to everything, man does not give-up the sinful path.

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता रीतिः ।।२९।।

धन अम्बार न सुख का सारा, लेश न सुख इनमें बहते,
निज सुत से अपि होत भयातुर, धन की गति ऐसी कहते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।२९।।

Wealth is not welfare, truly there is no joy in it. Reflect thus at all times. A rich man fears even his own son. This is the way of wealth everywhere.

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम् ।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम् ।।३०।।

प्राणायामं, प्रत्याहारम, नित्य निरत रत सत महते,
भज गोविन्दम, शांत समाधि, समाधिस्थ मन चित रहते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।३०।।

Regulate the prANa-s, life forces, remain unaffected

by external influences and discriminate between the real and the fleeting. Chant the holy name of God and silence the turbulent mind. Perform these with care, with extreme care.

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः ।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ।।३१।।

गुरु के चरण कमल नत वंदन, जिससे भव सागर तरते,
दत्त चित्त अनुशासित मन से, निज हिय प्रभु अनुभव करते,
भज गोविन्दम, भज गोविन्दम, गोविन्दम भज मूढ मते!।।३१।।

Oh devotee of the lotus feet of the Guru ! May thou be soon free from Samsara. Through disciplined senses and controlled mind, thou shalt come to experience the indwelling Lord of your heart !



अपरोक्षानुभूतिः

श्रीहरिं परमानन्दमुपदेष्टारमीश्वरम्।
व्यापकं सर्वलोकानां कारणं तं नमाम्यहम्।।१।।

व्यापक श्रीहरिः आत्म-भू सकल विश्व को मूल ।
परमानंद स्वरूप को, वंदन मूल समूल ।।१।।

I bow down to Him – to Sri Hari (the destroyer of ignorance), the Supreme Bliss, the First Teacher, Ishwara, the All-pervading One and the Cause of all Lokas (the universe).

अपरोक्षानुभूतिर्वै प्रोच्यते मोक्षसिद्धये।
सद्भिरेषा प्रयत्नेन वीक्षणीया मुहुर्मुहुः।।२।।

अपरोक्षानुभूति है, मोक्ष सिद्धि को हेतु ।
सत्पुरुषों के हेतु ही, कथित ज्ञान को सेतु ।।२।।

Herein is expounded (the means of attaining to)

Aparokshanubhuti (Self-Realization) for the acquisition of final liberation. Only the pure in heart should constantly and with all effort meditate upon the truth herein taught.

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम्।।३।।

तप वर्णाश्रम धर्म सों, जो हरि करत प्रसन्न ।
धर्म चतुष्टय विरत मन, सों वे जन संपन्न ।।३।।

The four preliminary qualifications (the means to the attainment of knowledge), such as Vairagya (dispassion) and the like, are acquired by men by propitiating Hari (the
3 Lord), through austerities and the performance of duties pertaining to their social order and stage in life.

ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु वैराग्यं विषयेष्वनु।
यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्मलम्।।४।।

लेकर ब्रह्मा बृहत से, स्थावर पर्यंत ।
काग बीट सम विरत वृति, वे ही विरत महंत ।।४।।

The indifference with which one treats the excreta of a crow – such an indifference to all objects of enjoyment from the realm of Brahma to this world (in view of their perishable nature), is verily called pure Vairagya.

नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम्।
एवं यो निश्चयः सम्यग्विवेको वस्तुनः स वै।।५।।

नित्य सरूपी आत्मा, दृश्य जगत विपरीत ।
ऐसा दृढ़ निश्चय वही, आत्म वस्तु परतीत ।।५।।

Atman (the seer) in itself is alone permanent, the seen is opposed to it (i.e., transient) – such a settled conviction is truly known as discrimination.

सदैव वासनात्यागः शमोऽयमिति शब्दितः।
निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम्र इत्यभिधीयते।।६।।

'शम' कहलाता सर्वदा, सकल वासना त्याग ।
'दम' कहलाता रोकना, सकल वृत्ति का राग ।।६।।

Abandonment of desires at all times is called Shama and the restraint of the external functions of the organs is called Dhama.

विषयेभ्यः परावृत्तिः परमोपरतिर्हि सा।
सहनं सर्वदुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता।।७।।

विषय विमुख, उपरति परम, चरम कोटि वैराग ।
शुंभ तितिक्षा, मान्यता, दुःख सहन व् त्याग ।।७।।

Turning away completely from all sense-objects is the height of Uparati, and patient endurance of all sorrow or pain is known as Titiksha, which is conducive to happiness.

निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता।
चित्तैकाग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम्।।८।।

शास्त्र और आचार्य के, कथित तथ्य श्रद्धेय ।
सतत चित्त एकाग्रता, समाधान शुभ ध्येय ।।८।।

Implicit faith in the words of the Vedas and the teachers (who interpret them) is known as Shraddha, and concentration of the mind on the only object Sat (i.e., Brahman) is regarded as Samadhana.

संसारबन्धनिर्मुक्तिः कथं स्यान्मे दयानिधे।
इति या सुदृढा बुद्धिर्वक्तव्या सा मुमुक्षुता।।९।।

भव बंधन सों मुक्ति कब, कैसे होगी नाथ ।
मुमुक्षता दृढ़ बुद्धि अस, कहते दृढ़ता साथ ।।९।।

When and how shall I, O Lord, be free from the bonds of this world (i.e., births and deaths) – such a burning desire is called Mumukshutha.

उक्तसाधनयुक्तेन विचारः पुरुषेण हि।
कर्तव्यो ज्ञानसिद्ध्यर्थमात्मनः शुभमिच्छता।।१०।।

उक्त साधनों युक्त जन, जिन निज शुभ की चाह ।
ज्ञान हेतु साधन यही, एकमेव यही राह ।।१०।।

Only that person, who is in possession of the said qualification (as means to Knowledge) should constantly reflect with a view to attaining Knowledge, desiring his own good.

नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः।
यथा पदार्थभानं हि प्रकाशेन विना क्वचित्।।११।।

बिनु प्रकाश न हो सके, जस पदार्थ को भान ।
बिनु प्रकाश संभव नहीं तस कोऊ साधन ज्ञान ।।११।।

Knowledge is not brought about by any other means than Vichara, just as an object is nowhere perceived (seen) without the help of light.

कोऽहं कथमिदं जातं को वा कर्तास्य विद्यते।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः।।१२।।

कौन मूल कारण जगत, उपादान, मैं कौन।
सकल नियामक शक्ति और, करनहार है कौन।।१२।।

Who am I ? How is this (world) created ? Who is its creator ? Of what material is this (world) made? This is the way of that Vichara (enquiry).

नाहं भूतगणो देहो नाहं चाक्षगणस्तथा।
एतद्विलक्षणः कश्चिद्विचारः सोऽयमीदृशः।।१३।।

ना इन्द्रिय ना देह मैं, अपितु भिन्न कोई अन्य।
देहिन देह से अति परे, देहिन परम अनन्य।।१३।।

I am neither the body, a combination of the (five) elements (of matter), nor am I an aggregate of the senses; I am something different from these. This is the way of that Vichara.

अज्ञानप्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते।
संकल्पो विविधः कर्ता विचारः सोऽयमीदृशः।।१४।।

सब प्रपंच अज्ञान मय, बोध होत सब लीन ।
संकल्पित मन मूल अथ, बन संकल्प विहीन ।।१४।।

Everything is produced by ignorance, and dissolves in the wake of Knowledge. The various thoughts 7 (modifications of Anthahkaranam) must be the creator. Such is this Vichara

एतयोर्यदुपादानमेकं सूक्ष्मं सदव्ययम्।
यथैव मृद्घटादीनां विचारः सोऽयमीदृशः।।१५।।

माटी घट को हेतु जस, तस संकल्प अज्ञान ।
को हेतु है सूक्ष्म सत, अविनाशी को जान ।।१५।।

The material (cause) of these two (i.e., ignorance and thought) is the One (without a second), subtle (not apprehended by the senses) and unchanging Sat (Existence), just as the earth is the material (cause) of the pot and the like. This is the way of that Vichara.

अहमेकोऽपि सूक्ष्मश्च ज्ञाता साक्षी सदव्ययः।
तदहं नात्र संदेहो विचारः सोऽयमीदृशः।।१६।।

सूक्ष्म, सत्य, साक्षी महत, ज्ञाता अमर विदेह ।
मैं भी तो अथ हूँ वही, बिना नेकु संदेह ।।१६।।

As I am also the One, the Subtle, the Knower, the Witness, the Ever-Existent, and the Unchanging, so there is no doubt that I am "That" (i.e., Brahman). Such is this enquiry.

आत्मा विनिष्कलो ह्येको देहो बहुभिरावृतः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्।।१७।।

एकमेव है आत्मा, बहु तत्वन सों देह ।
एक दिखत जिनको महा, मूढ़ बिना संदेह ।।१७।।

Atman is verily one and without parts, whereas the body consists of many parts; and yet the people see (confound, mistake, confuse) these two as one ! What else can be called ignorance but this?

आत्मा नियामकश्चान्तर्देहो बाह्यो नियम्यकः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्।।१८।।

अंतरवर्ती आत्मा, तथा बाह्य है देह ।
देखत इनमें एकता, मूढ़ बिना संदेह ।।१८।।

Atman is the ruler of the body and is internal, the body is the ruled and is external; and yet, the people see

(confound) these two as one! What else can be called ignorance but this?

आत्मा ज्ञानमयः पुण्यो देहो मांसमयोऽशुचिः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्।।१९।।

ज्ञान स्वरूपी आत्मा, पावन महत महान ।
देह अपावन मांस मय, एक कहत बिनु ज्ञान ।।१९।।

Atman is all consciousness and holy, the body is all flesh and impure; and yet, the people see 9 (mistake) these two as one! What else can be called ignorance but this?

आत्मा प्रकाशकः स्वच्छो देहस्तामस उच्यते।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्।।२०।।

शुद्ध प्रकाशक आतमा, और तमो मय देह ।
देखत इनमें एकता, मूढ़ वे बिनु संदेह ।।२०।।

Atman is the (supreme) Illuminator and purity itself; the body is said to be of the nature of darkness; and yet, the people see (mistake) these two as one! What else can be called ignorance but this?

आत्मा नित्यो हि सद्रूपो देहोऽनित्यो ह्यसन्मयः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्।।२१।।

सत्य नित्य है आतमा, असत अनित्य है देह।
देखत इनमें एकता, मूढ़ वे बिनु संदेह ।।२१।।

Atman is eternal, since it is Existence itself; the body is transient, as it is non-existence in essence; and yet the people see (mistake) these two as one ! What else can be called ignorance but this?

आत्मनस्तत्प्रकाशत्वं यत्पदार्थावभासनम्।
नाग्न्यादिदीप्तिवद्दीप्तिर्भवत्यान्ध्यं यतो निशि।।२२।।

जो प्रतीति है द्रव्य में, आत्म-ज्योति ताहि जान।
अग्नि ज्योति सम यह नहीं, ज्योतित सदा महान ।।२२।।

The luminosity of Atman consists in the manifestation of all objects. Its luminosity is not like that of fire or any such thing, for (in spite of the presence of such lights), darkness prevails at night (at some place or other).

देहोऽहमित्ययं मूढो मत्वा तिष्ठत्यहो जनः।
ममायमित्यपि ज्ञात्वा घटद्रष्टेव सर्वदा।।२३।।

घट दृष्टा सम अनवरत, मूढ़ कहत मैं देह।
'यह मेरा है' तथ्य यह, तदपि न कहत विदेह।।२३।।

How strange is it that a person ignorantly rests contented with the idea that he is the body, while he knows it as something belonging to him (and therefore, apart/ separate from him), even as a person who sees a pot (knows it as apart from him)!

ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।।२४।।

सत-चित-आनंद रूप मैं, असत रूप नहीं देह।
ज्ञान कहत अथ बुधि जना, ब्रह्म हूँ बिनु संदेह।।२४।।

I am verily Brahman, being equanimous, quiescent, and by nature absolute Existence, Knowledge, and Bliss. I am 11 not the body, which is non-existence itself. This is called true Knowledge by the wise.

निर्विकारो निराकारो निरवद्योऽहमव्ययः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।।२५।।

निर्विकार, निर्मल, अमर, असत रूप नहीं देह।
ज्ञान कहत अथ बुधि जना, ब्रह्म हूँ बिनु संदेह।।२५।।

I am without any change, without any form, free from all blemish and decay. I am not the body, which is non-existence itself. This is called true Knowledge by the wise.

निरामयो निराभासो निर्विकल्पोऽहमाततः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।।२६।।

निर्विकल्प, दुःख-हीन मैं, असत रूप नहीं देह।
ज्ञान कहत, अथ बुधि जना, ब्रह्म हूँ बिनु संदेह ।।२६।।

I am not subjected to any disease, I am beyond all comprehension, free from all alternatives and all-pervading. I am not the body, which is non-existence itself. This is called true Knowledge by the wise.

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो नित्यमुक्तोऽहमच्युतः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।।२७।।

अच्युत, निर्गुण नित्य मैं, असत रूप नहीं देह।
ज्ञान कहत, अथ बुधि जना, ब्रह्म हूँ बिनु संदेह ।।२७।।

I am without any attribute or activity, I am eternal, ever free, and imperishable. I am not the body, which is

nonexistence itself. This is called true Knowledge by the wise.

निर्मलो निश्चलोऽनन्तः शुद्धोऽहमजरोऽमरः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।।२८।।

अमर, अनंता, शुद्ध मैं, असत रूप नहीं देह।
ज्ञान कहत, अथ बुधि जना, ब्रह्म हूँ बिनु संदेह।।२८।।

I am free from all impurity, I am immovable, unlimited, holy, undecaying, and immortal. I am not the body, which is non-existence itself. This is called true Knowledge by the wise.

स्वदेहे शोभनं संतं पुरुषाख्यं च संमतम्।
किं मूर्ख शून्यमात्मानं देहातीतं करोषि भोः।।२९।।

देह में 'देहातीत' से रे मूरख! अनजान।
शून्य रूप क्यों करत है, देहातीत महान।।२९।।

O you ignorant one! Why do you assert the blissful, ever-existent Atman, which resides in your own body and is (evidently) different from it, which is known as Purusha and is established (by the Shruti as identical with

Brahman), to be absolutely non-existent?

स्वात्मानं शृणु मूर्ख त्वं श्रुत्या युक्त्या च पूरुषम्।
देहातीतं सदाकारं सुदुर्दर्शं भवादृशैः।।३०।।

मूढ़-मता जन को कठिन, देहातीत को भान।
युक्ति मय, श्रुति ज्ञान सों, परम-पुरुष को जान।।३०।।

O you ignorant one! Try to know, with the help of Shruti and reasoning, your own Self, Purusha, which is different from the body, (not a void but) the very form of existence, and very difficult for persons like you to realize.

अहंशब्देन विख्यात एक एव स्थितः परः।
स्थूलस्त्वनेकतां प्राप्तः कथं स्याद्देहकः पुमान्।।३१।।

एकमेव, स्थित परम, 'अहं' शब्द विख्यात।
फिर कैसे स्थूल को, 'परम-पुरुष' कथ ज्ञात।।३१।।

The Supreme (Purusha) known as "I" (ego) is but one, whereas the gross bodies are many. So how can this body be Purusha ?

अहं द्रष्टतया सिद्धो देहो दृश्यतया स्थितः।
ममायमिति निर्देशात्कथं स्याद्देहकः पुमान्।।३२।।

दृष्टा रूपे सिद्ध 'अहं', दृश्य रूप से देह ।
'पुरुष' देह कैसे भला, असत है बिनु संदेह ।।३२।।

"I" (ego) is well established as the subject of perception, whereas the body is the object. This is learnt from the fact that, when we speak of the body, we say: "This is mine." So, how can this body be Purusha?

अहं विकारहीनस्तु देहो नित्यं विकारवान्।
इति प्रतीयते साक्षात्कथं स्याद्देहकः पुमान्।।३३।।

बहु विकार मय देह तो, अहं विकार विहीन ।
यह प्रतीति स्पष्ट फिर, देह 'पुरुष' को कीन ।।३३।।

It is a fact of direct experience that the "I" (Atman) is without any change, whereas the body is always undergoing changes. So how can this body be Purusha?

यस्मात्परमिति श्रुत्या तया पुरुषलक्षणम्।
विनिर्णीतं विमूढेन कथं स्याद्देहकः पुमान्।।३४।।

'पुरुष' का लक्षण श्रुति विदित यस्मात्परं, प्रवीण,
विज्ञ जनों का कथन अथ, देह 'पुरुष' को कीन,.(३४)

Wise men have ascertained the (real) nature of Purusha from that Shruti text, "(There is nothing) higher than He (Purusha)," etc. So how can this body be Purusha?

सर्वं पुरुष एवेति सूक्ते पुरुषसंज्ञिते।
अप्युच्यते यतः श्रुत्या कथं स्याद्देहकः पुमान्।।३५।।

पुरुष सूक्त में वेद ने, कहा 'पुरुष' सर्वस्व ।
देह 'पुरुष' कैसे हुआ, 'पुरुष' का ही वर्चस्व ।।३५।।

Again, the Shruti has declared in the Purusha Sukta that "All this is verily the Purusha". So how can this body be Purusha?

असङ्गः पुरुषः प्रोक्तो बृहदारण्यकेऽपि च।
अनन्तमलसंसृष्टः कथं स्याद्देहकः पुमान्।।३६।।

बृहदरंयक उपनिषद, 'पुरुष' को कहत असंग ।
क्यों मलमय इस देह को, देहिन कहत विसंग ।।३६।।

So also, it is said in Brihadaranyaka: "The Purusha is completely unattached." How can this body, wherein inhere innumerable impurities be the Purusha?

तत्रैव च समाख्यातः स्वयंज्योतिर्हि पूरुषः।
जडः परप्रकाश्योऽयं कथं स्याद्देहकः पुमान्।।३७।।

कथित वहीं पर यह कथन, पुरुष है स्वयं प्रकाश।
जड़ शरीर कैसे 'पुरुष', क्या संभव विश्वास ? ।।३७।।

There again it is clearly stated that "the Purusha is se lf- illumined." So, how can the body which is inert (in-sentient) and illumined by an external agent be the Purusha?

प्रोक्तोऽपि कर्मकाण्डेन ह्यात्मा देहाद्विलक्षणः।
नित्यश्च तत्फलं भुंक्ते देहपातादनन्तरम्।।३८।।

कर्मकांड में कथित अपि, देहिन देह से भिन्न।
पात अनंतर देह के, भोगत भोग विभिन्न ।।३८।।

Moreover, the Karma-kanda also declares that the Atman is different from the body and permanent, as it endures even after the fall of the body and reaps the fruits of actions (done in this life).

लिङ्गं चानेकसंयुक्तं चलं दृश्यं विकारि च।
अव्यापकमसद्रूपं तत्कथं स्यात्पुमानयम्।।३९।।

सूक्ष्म देह भी असत है, बहु तत्वन संघात ।
परिवर्तित, सीमित दिखत, कैसे 'पुरुष' कहात ? ।।३९।।

Even the subtle body consists of many parts and is unstable. It is also an object of perception, is changeable, limited and non-existent by nature. So, how can this be the Purusha?

एवं देहद्वयादन्य आत्मा पुरुष ईश्वरः।
सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वातीतोऽहमव्ययः।।४०।।

सूक्ष्म और स्थूल अथ, देह सों भिन्न अनन्य ।
सर्वरूप, सर्वात्म मैं, परे परात्पर अन्य ।।४०।।

The immutable Atman, the substratum of the ego, is thus different from these two bodies, and is the Purusha, the Ishwara (the Lord of all), the Self of all; It is present in every form and yet, transcends them all.

इत्यात्मदेहभानेन प्रपञ्चस्यैव सत्यता।
यथोक्ता तर्कशास्त्रेण ततः किं पुरुषार्थता।।४१।।

द्वैत-मिथ्यात्व

देह-आतमा भेद से, जदपि प्रपंच प्रतीत ।
तर्क-शास्त्र पुष्टि तदपि, न पुरुषार्थ प्रतीति ।।४१।।

Thus, the enunciation of the difference between the Atman and the body has (indirectly) asserted, indeed, after the manner of the Tarkashastra, the reality of the phenomenal world. But, what end of human life is served thereby?

इत्यात्मदेहभेदेन देहात्मत्वं निवारितम्।
इदानीं देहभेदस्य ह्यसत्त्वं स्फुटमुच्यते।।४२।।

देह-आतमा भाव का, निराकरण और भेद ।
देह-भेद, असत्यत्व अब, वर्णन तथ्य अभेद ।।४२।।

Thus, the view that the body is the Atman has been denounced, by the enunciation of the difference between the Atman and the body. Now, is clearly stated the unreality of the difference between the two.

चैतन्यस्यैकरूपत्वाद्भेदो युक्तो न कर्हिचित्।
जीवत्वं च मृषा ज्ञेयं रज्ज्वां सर्पग्रहो यथा।।४३।।

एकरूप चैतन्य है, भेद रहित, यह ज्ञान ।
सर्प प्रतीति रज्जु में, जीव भाव, अज्ञान ।।४३।।

No division in Consciousness is admissible, at any

time, as it is always one and the same. Even the 18 individuality of the Jiva must be known as false, like the delusion of a snake in a rope.

रज्ज्वज्ञानात्क्षणेनैव यद्वद्रज्जुर्हि सर्पिणी।
भाति तद्वच्चितिः साक्षाद्विश्वाकारेण केवला।।४४।।

रसरी भासत सर्पिनी, कारणवश अज्ञान ।
विश्व रूप से भासती, तस सत चित्ति महान ।।४४।।

As through the ignorance of the real nature of the rope, the very rope appears, in an instant, as a snake, so also, does pure Consciousness appear in the form of the phenomenal universe, without undergoing any change.

उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते।
तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत्।।४५।।

जग प्रपंच के मूल में, ब्रह्म एक, नहीं अन्य ।
उपादान भी ब्रह्म है, सबमें ही चैतन्य ।।४५।।

There exists no other material cause of this phenomenal universe, except Brahman. Hence, this whole universe is but Brahman and nothing else.

व्याप्यव्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात्।
इति ज्ञाते परे तत्त्वे भेदस्यावसरः कुतः।।४६।।

जो कुछ है सों आतमा, शास्त्र कहत सत मूल।
परम तत्व इस ज्ञान से, मिटता भेद समूल।।४६।।

From such declaration (of the Shruti), as "All this is Atman," it follows that the idea of the pervaded and the pervading is illusory. This supreme truth being realized, where is the room for any distinction between the cause and the effect?

श्रुत्या निवारितं नूनं नानात्वं स्वमुखेन हि।
कथं भासो भवेदन्यः स्थिते चाद्वयकारणे।।४७।।

द्वैत्व कहाँ अद्वैत्व में, श्रुति भी करत निषेध।
अद्वितीय में अन्य का, ना आभास ना वेध।।४७।।

Certainly, the Shruti has directly denied manifoldness in Brahman. The Non-dual Cause being an established fact, how could the Phenomenal Universe be different from It?

दोषोऽपि विहितः श्रुत्या मृत्योर्मृत्युं स गच्छति।
इह पश्यति नानात्वं मायया वञ्चितो नरः।।४८।।

जग में माया ठगित जन, ही देखत नानात्व।
प्राप्त मृत्यु से मृत्यु को, वेद कहत एकत्व।।४८।।

Moreover, the Shruti has condemned (the belief in variety) in the words: "The person who," being deceived by Maya, "sees variety in this (Brahman), goes from death to death."

ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः।
तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत्।।४९।।

जगत की ब्रह्मरूपता

सकल जीव परब्रह्म से, मूल रूप निष्पन्न।
अतः विश्व परब्रह्ममय, ब्रह्म से ही सम्पन्न।।४९।।

Inasmuch as all beings are born of Brahman, the Supreme Atman, they must be understood to be verily Brahman.

ब्रह्मैव सर्वनामानि रूपाणि विविधानि च।
कर्माण्यपि समग्राणि बिभर्तीति श्रुतिर्जगौ।।५०।।

सकल नाम ब्रह्म रूप मय, सकल करम आधार।
एकमेव परब्रह्म है, अथ, कथ, अस श्रुति सार।।५०।।

The Shruti has clearly declared that Brahman alone is the substratum of all varieties of names, forms and actions.

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत्।।५१।।

कनक तो कनक सदैव जस, निर्मित वस्तु अनेक ।
ब्रह्म जनित तस वस्तु में, ब्रह्म तत्व नित एक ।।५१।।

Just as a thing made of gold ever has the nature of gold, so also a being born of Brahman has always the nature of Brahman.

स्वल्पमप्यन्तरं कृत्वा जीवात्मपरमात्मनोः।
योऽवतिष्ठति मूढात्मा भयं तस्याभिभाषितम्।।५२।।

जीवात्मा परमात्मा, में नहीं अंतर लेश ।
श्रुति कहत अस मूढ़ के, अंतस रहत क्लेश ।।५२।।

Fear is attributed to the ignorant one who rests after making even the slightest distinction between the Jivatman and the Paramatman.

यत्राज्ञानाद्भवेद्द्वैतमितरस्तत्र पश्यति।
आत्मत्वेन यदा सर्वं नेतरस्तत्र चाण्वपि।।५३।।

द्वैत भाव अज्ञान है, दुविधा मय दुइ रूप ।
जब अद्वैत मय ज्ञान हो, आत्म रूप सब रूप ।।५३।।

When duality appears through ignorance, one sees another; but when everything becomes identified with the Atman, one does not perceive another even in the least.

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि ह्यात्मत्वेन विजानतः।
न वै तस्य भवेन्मोहो न च शोकोऽद्वितीयतः।।५४।।

सकल विश्व अब आत्म-मय, को आपुनि को और ।
अब अनन्य संसार कत, शोक मोह को ठौर ।।५४।।

In that state, when one realizes all as identified with the Atman, there arises neither delusion nor sorrow, in consequence of the absence of duality.

अयमात्मा हि ब्रह्मैव सर्वात्मकतया स्थितः।
इति निर्धारितं श्रुत्या बृहदारण्यसंस्थया।।५५।।

आतमा ही तो ब्रह्म है, सर्व आत्म के भाव।
बृहदारंयक उपनिषद, कथित यही समभाव ।।५५।।

The Shruti in the form of the Brihadaranyaka has declared that this Atman, which is the Self of all, is verily Brahman.

अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन्।
असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधतः।।५६।।

प्रपंच का मिथ्यात्व

स्वप्न असत जस होत हैं, तस ही यह संसार।
अगले पल मिट जात हैं, जदपि लगत सत सार ।।५६।।

This world, though an object of our daily experience and serving all practical purposes, is, like the dream world, of the nature of non-existence, inasmuch as it is contradicted the next moment.

स्वप्नो जागरणेऽलीकः स्वप्नेऽपि न हि जागरः।
द्वयमेव लये नास्ति लयोऽपि ह्युभयोर्न च।।५७।।

जागत ही सपना गया, स्वप्न ना जागत कोय।
जागृत,स्वप्न,सुषुप्ति में, रहत ना संग-संग दोय ।।५७।।

The dream (experience) is unreal, in waking, whereas the waking (experience) is absent in dream. Both, however, are non-existent in deep sleep which, again, is not experienced in either.

त्रयमेवं भवेन्मिथ्या गुणत्रयविनिर्मितम्।
अस्य द्रष्टा गुणातीतो नित्यो ह्येकश्चिदात्मकः।।५८।।

अथ सत, रज, तम तीन गुण, निर्मित तथ्य असत्य ।
गुणातीत, दृष्टा परम, किन्तु परात्पर नित्य ।।५८।।

Thus, all the three states are unreal inasmuch as they are the creation of the three Gunas; but their witness (the reality behind them) is, beyond all Gunas, eternal, one, and is Consciousness itself.

यद्वन्मृदि घटभ्रान्तिं शुक्तौ वा रजतस्थितिम्।
तद्वद्ब्रह्मणि जीवत्वं भ्रान्त्या पश्यति न स्वतः।।५९।।

जैसे भ्रमवश मृत्तिका, में घट की परतीति ।
तैसे, भ्रमवश ब्रह्म में, जीव को भाव प्रतीत ।।५९।।

Just as (after the illusion has gone) one is no more deluded to see a jar in earth or silver in the nacre, so does one no more see Jiva in Brahman when the latter is real-

ized (as one's own self).

यथा मृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा।
शुक्तौ हि रजतख्यातिर्जीवशब्दस्तथा परे।।६०।।

सीपी-चांदी, कुण्डला, माटी-घट भ्रम रूप ।
जीव भाव परब्रह्म तस, नाम को ही प्रारूप ।।६०।।

Just as earth is described as a jar, gold as an ear-ring, and a nacre as silver, so is Brahman described as Jiva.

यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा नीरं मरुस्थले।
पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि।।६१।।

जस नभ में है नीलिमा, मरू भूमि जल-धार ।
पुरुष प्रतीती ठूँठ में, तस चेतन संसार ।।६१।।

Just as blueness in the sky, water in the mirage, and a human figure in a post (are but illusory), so is the universe in Atman.

यथैव शून्ये वेतालो गन्धर्वाणां पुरं यथा।
यथाकाशे द्विचन्द्रत्वं तद्वत्सत्ये जगत्स्थितिः।।६२।।

यथा नगर गन्धर्व की, शून्य में जस वैताल ।
नभ में जस दो चंद्रमा, सत में तस, जग हाल ।।६२।।

Just as the appearance of a ghost in an empty place, of a castle in the air, and of a second moon in the sky (is illusory), so is the appearance of the universe in Brahman.

यथा तरङ्गकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम्।
पात्ररूपेण ताम्रं हि ब्रह्माण्डौघैस्तथात्मता।।६३।।

पात्र रूप में ताम्र जस, जल तरंग जलधार ।
तस ही आत्मा स्फुरित, ब्रह्मांडे प्रासार ।।६३।।

Just as it is water that appears as ripples and waves, or again, it is copper, that appears in the form of vessel, so, it is Atman that appears as the whole universe.

घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः।
जगन्नाम्ना चिदाभाति ज्ञेयं तत्तदभावतः।।६४।।

पृथ्वी जस घट नाम से, और पट नाम सों वस्त्र ।
चित्त-शक्ति जग नाम तस, यत्र-तत्र-सर्वत्र ।।६४।।

Just as it is earth that appears under the name of a

jar, or it is threads that appear under the name of a cloth, so, it is Atman that appears under the name of the universe. This Atman is to be known by negating the names.

सर्वोऽपि व्यवहारस्तु ब्रह्मणा क्रियते जनैः।
अज्ञानान्न विजानन्ति मृदेव हि घटादिकम्।।६५।।

ब्रह्म की सर्वात्मकता

मानव कृत व्यवहार सब, सत्ता ब्रह्म स्वरूप।
भ्रमित सदा अज्ञान वश, घट माटी एक रूप।।६५।।

People perform all their actions in and through Brahman, (but, on account of ignorance, they are not aware of that), just as, through ignorance, persons do not know that jars and other earthenwares are nothing, but earth.

कार्यकारणता नित्यमास्ते घटमृदोर्यथा।
तथैव श्रुतियुक्तिभ्यां प्रपञ्चब्रह्मणोरिह।।६६।।

जस घटादि में मृत्तिका, कारण रूप सदैव।
ब्रह्म सदा सर्वत्र तस, विद्यमान एकमेव।।६६।।

Just as there ever exist the relation of cause and effect between earth and a jar, so, does the same relation

exist between Brahman and the phenomenal world; this has been established here, on the strength of scriptural texts and reasoning.

गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात्।
वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चेऽपि ब्रह्मैवाभाति भासुरम्।।६७।।

जस ग्रहीत घट, मृत्तिका, होत बलात प्रतीत ।
तस दृष्टव्य प्रपंच में, ब्रह्म की होत प्रतीति ।।६७।।

Just as (the consciousness of) earth forces itself upon our mind, while thinking of a jar, so also, does (the idea of) ever-shining Brahman flash on us, while contemplating on the phenomenal world.

सदैवात्मा विशुद्धोऽपि ह्यशुद्धो भाति वै सदा।
यथैव द्विविधा रज्जुर्ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽनिशम्।।६८।।

नित्य, शुद्ध, शुचि आत्मा, पावन होत प्रतीत ।
रसरी, मूढ़-विमूढ़ को, दिखत सदा दुइ रीत ।।६८।।

Atman, though ever pure (to a wise man), always appears to be impure (to an ignorant one), just as a rope always appears in two different ways to a knowing person and an ignorant one.

यथैव मृन्मयः कुम्भस्तद्वद्देहोऽपि चिन्मयः।
आत्मानात्मविभागोऽयं मुधैव क्रियते बुधैः।।६९।।

जस घट माटी रूप है, तस तन चेतन रूप।
अज्ञानी जन व्यर्थ ही, विघटित करत सरूप।।६९।।

Just as a jar is all earth, so also, is the body all Consciousness. The division, therefore, into the Self and non-Self is made by the ignorant to no purpose.

सर्पत्वेन यथा रज्जू रजतत्वेन शुक्तिका।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता।।७०।।

देहात्मा का निषेध

सर्प रूप सम रासरी, सीपी रजत प्रतीत।
मूढ़ जना तस आतमा, देह रूप की रीत।।७०।।

Just as a rope is imagined to be a snake and a nacre to be a piece of silver, so is the Atman determined to be the body by an ignorant person.

घटत्वेन यथा पृथ्वी पटत्वेनैव तन्तवः।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता।।७१।।

पृथ्वी में घट रूप जस, और पट रूप में तंतु।
तस देहिन को मूढ़ जन, देह के रूप विदन्तु ।।७१।।

Just as earth is thought of as a jar (made of it) and threads, as a cloth, so, is Atman, determined to be the body, by an ignorant person.

कनकं कुण्डलत्वेन तरङ्गत्वेन वै जलम्।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता।।७२।।

कुण्डल कनक आभास जस, जल तरंग को रूप
मूढ़ जना तस देह में, देखत आत्म स्वरूप ।।७२।।

Just as gold is thought of as an ear-ring and water as waves, so, is the Atman, determined to be the body, by an ignorant person.

पुरुषत्वेन वै स्थाणुर्जलत्वेन मरीचिका।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता।।७३।।

भ्रान्ति चोर की ठूंठ में, मरुथल में जल रूप।
मूढ़ जना तस देह में, देखत आत्म स्वरूप ।।७३।।

Just as the stump of a tree is mistaken for a human

figure and a mirage for water, so, is the Atman determined to be the body, by an ignorant person.

गृहत्वेनैव काष्ठानि खड्गत्वेनैव लोहता।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता।।७४।।

खड्ग रूप से लौह का, और काष्ठ गृह रूप।
मूढ़ जना तस देह में, देखत आत्म स्वरूप।।७४।।

Just as a mass of wood work is thought of as a house and iron as a sword, so, is the Atman determined to be the body, by an ignorant person.

यथा वृक्षविपर्यासो जलाद्भवति कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।७५।।

जल के कारण दिखत जस, उलटा वृक्ष का रूप।
मूढ़ जना तस देह में, देखत आत्म स्वरूप।।७५।।

Just as one sees the illusion of a tree on account of water, so does, a person on account of ignorance, see the Atman as the body.

पोतेन गच्छतः पुंसः सर्वं भातीव चञ्चलम्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।७६।।

चलित दिखत जस द्रव्य सब, जो जहाज में जाय।
मूढ़ जना तस देह में, देहिन भ्रम, भरमाय ।।७६।।

Just as to a person going in a boat everything appears to be in motion, so does one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

पीतत्वं हि यथा शुभ्रे दोषाद्भवति कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।७७।।

श्वेत वस्तु पीली दिखत, यदि नयनों में दोष ।
तस बिनु ज्ञान सों आत्मा, देह भाव को दोष ।।७७।।

Just as to a person suffering from a defect (jaundice) white things appear as yellow, so does one on account of ignorance, see Atman as the body.

चक्षुर्भ्यां भ्रमशीलाभ्यां सर्वं भाति भ्रमात्मकम्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।७८।।

यदि घुमाओ आँख तो, दिखत चक्र आकार ।
मूढ़ जना तस देह में, देहिन, भ्रमित विचार ।।७८।।

Just as to a person with defective eyes everything

appears to be defective, so does one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

अलातं भ्रमणेनैव वर्तुलं भाति सूर्यवत्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।७९।।

ज्वलित घूमती बर्तिका, रवि सम गोलाकार ।
मूढ़ जना तस देह में, देहिन, भ्रमित विचार ।।७९।।

Just as a firebrand, through mere rotation, appears circular like the sun, so does one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

महत्त्वे सर्ववस्तूनामणुत्वं ह्यतिदूरतः।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।८०।।

बड़ी वस्तु दीखत लघु, देखो यदि, रह दूर ।
बिना ज्ञान तस आत्मा, नित्य निकट पर दूर ।।८०।।

Just as all things that are really large appear to be very small owing to great distance, so does, one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

सूक्ष्मत्वे सर्ववस्तूनां स्थूलत्वं चोपनेत्रतः।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।८१।।

दीखत जस दूरबीन सों, सूक्ष्म वस्तु स्थूल ।
मूढ़ जना तस देह को, देहिन जानत, भूल ।।८१।।

Just as all objects that are very small, appear to be large, when viewed through lenses, so does, one, on account of ignorance, see the Atman, as the body.

काचभूमौ जलत्वं वा जलभूमौ हि काचता।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।८२।।

जल और जल में कांच का, कांच भूमि, भ्रम रूप ।
अज्ञानी तस देहिन को, मानत देह सरूप ।।८२।।

Just as a surface of glass is mistaken for water, or vice versa, so does one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

यद्वदग्नौ मणित्वं हि मणौ वा वह्निता पुमान्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।८३।।

मणि में अग्नि, अग्नि में मणि का, भ्रम मूलक जो रूप।
अज्ञानी तस देहिन को, मानत देह सरूप ।।८३।।

Just as a person imagines a jewel in fire or vice

versa, so does one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

अभ्रेषु सत्सु धावत्सु धावन्निव यथा शशी।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।८४।।

यद्यपि बादल दौड़ते, दौड़ते चन्द्र प्रतीत ।
देहिन में तस ज्ञान बिनु, देह भाव सों मीत ।।८४।।

Just as when clouds move, the moon appears to be in motion, so does one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

यथैव दिग्विपर्यासो मोहाद्भवति कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।८५।।

जैसे कोई मोह वश, दिशा भ्रमित हुई जात ।
देहिन में तस ज्ञान बिनु, देह भाव संज्ञात ।।८५।।

Just as a person through confusion loses all distinction between the different points of the compass, so does one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

यथा शशी जले भाति चञ्चलत्वेन कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः।।८६।।

जस मयंक चंचल दिखे, चंचल, जब हो नीर।
देहिन में अज्ञान वश, मूढ़ को दिखे शरीर ।।८६।।

Just as the moon (when reflected) in water appears to one as unsteady, so does one, on account of ignorance, see the Atman as the body.

एवमात्मनि नज्ञाते देहाध्यासो हि जायते।
स एवात्मा परिज्ञातो लीयते च परात्मनि।।८७।।

दिखत आत्मा देह में, कारण, वश अज्ञान।
आत्मज्ञान, जेहि क्षण मिले, सोई, परब्रह्म सुजान ।।८७।।

Thus, through ignorance arises in Atman, the delusion of the body, which, again, through Self-realization, disappears in the supreme Atman.

सर्वमात्मतया ज्ञातं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
अभावात्सर्वभावानां देहानां चात्मता कुतः।।८८।।

जड़-जंगम जब जगत सब, आत्म रूप हुइ जाय।।
हो अभाव सब भाव का, द्वैत कहाँ रह जाय ? ।।८८।।

When the whole universe, movable and immovable, is known to be Atman, and thus the existence of everything else is negated, where is then any room to say that the body is Atman?

आत्मानं सततं जानन्कालं नय महामते।
प्रारब्धमखिलं भुञ्जन्नोद्वेगं कर्तुमर्हसि।।८९।।

सतत ही आत्म-स्वरूप को, जान और पहचान ।
महामते ! प्रारब्ध अथ, भोग ले, यही निदान ।।८९।।

O enlightened one, pass your time always contemplating on Atman, while you are experiencing all the results of Prarabdha; for, it ill becomes you to feel distressed.

उत्पन्नेऽप्यात्मविज्ञाने प्रारब्धं नैव मुञ्चति।
इति यच्छ्रूयते शास्त्रात्तन्निराक्रियतेऽधुना।।९०।।

प्रारब्ध का निराकरण

आत्मज्ञान उपरान्त भी, रहत शेष प्रारब्ध ।
शास्त्र वचन अस कथित अथ, निराकरण उपलब्ध ।।९०।।

The theory one hears of from the scripture, that Prarabdha does not lose its hold upon one even after the

origination of the knowledge of Atman, is now being refuted.

तत्त्वज्ञानोदयादूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते।
देहादीनामसत्यत्वाद्यथा स्वप्नः प्रबोधतः।।९१।।

स्वप्न असत जस होत हैं, जब जागत है जीव ।
देह मोह तस भंग हो, लगत तथापि सजीव ।।९१।।

After the origination of the knowledge of Reality, Prarabdha verily ceases to exist, inasmuch as the body and the like become non-existent; just as a dream does not exist on waking.

कर्म जन्मान्तरकृतं प्रारब्धमिति कीर्तितम्।
तत्तु जन्मान्तराभावात्पुंसो नैवास्ति कर्हिचित्।। ९२ ।।

विगत जनम के करम ही, प्राराब्धा कहलात ।
अतः अनंतर जनम के, शेष न कुछ रह जात ? ।।९२।।

That Karma, which is done in a previous life, is known as Prarabdha (which produces the present life). But such Karma cannot take the place of Prarabdha (for a man of knowledge), as he has no other birth (being free from ego).

स्वप्नदेहो यथाध्यस्तस्तथैवायं हि देहकः।
अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे स्थितिः कुतः।। १३ ।।

स्वप्न देह अध्यस्त जस, तस ही तो यह देह।
जनम कुतो अद्ध्यस्त का, न प्रारब्ध न देह।।१३।।

Just as the body in a dream is superimposed (and therefore illusory), so is also this body. How could there be any birth of the superimposed (body), and.in the absence of 34 birth (of the body) where is the room for that (i.e., Prarabdha) at all?

उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्भाण्डस्येव कथ्यते।
अज्ञानं चैव वेदान्तैस्तस्मिन्नष्टे क्व विश्वता।। १४ ।।

उपादान घट मृत्तिका, तस ही विश्व प्रपंच।
नष्ट हुआ अज्ञान तब, विश्व रहत कत रंच।।१४।।

The Vedanta texts declare ignorance to be verily the material (cause) of the phenomenal world just as earth is of a jar. That (ignorance) being destroyed, where can the universe subsist?

यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात्।
तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः।। १५ ।।

भ्रम वश जैसे सर्प का, रसरी में आभास ।
बिनु जाने सत, तस रहत, जगत मूढ़ आवास ।।९५।।

Just as a person, out of confusion, perceives only the snake leaving aside the rope, so does, an ignorant person see only the phenomenal world, without knowing the reality.

रज्जुरूपे परिज्ञाते सर्पभ्रान्तिर्न तिष्ठति।
अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चः शून्यतां व्रजेत्।। ९६ ।।

रज्जु रूप परिज्ञान से, सर्व भ्रान्ति मिट जाय ।
ब्रह्म ज्ञान के ज्ञान से, सब प्रपंच सिमटाय ।।९६।।

The real nature of the rope being known, the appearance of the snake no longer persists; so the substratum being known, the phenomenal world disappears completely.

देहस्यापि प्रपञ्चत्वात्प्रारब्धावस्थितिः कुतः।
अज्ञानिजनबोधार्थं प्रारब्धं वक्ति वै श्रुतिः।। ९७ ।।

है प्रपंच यह देह भी, कहाँ रहत प्रारब्ध ।
मूढ़ जना की तुष्टि को, वेद वाक्य उपलब्ध ।।९७।।

The body also being within the phenomenal world (and therefore unreal), how could Prarabdha exist? It is, therefore, for the understanding of the ignorant alone that the Shruti speaks of Prarabdha.

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।
बहुत्वं तन्निषेधार्थं श्रुत्या गीतं च वै स्फुटम्।। ९८ ।।

क्षीण कर्म होते सकल, परावरे को देख ।
हों प्रारब्ध निषेध अतः, ऐसा है उल्लेख ।।९८।।

And all the actions of a man perish, when he realizes that (Atman) which is both the higher and the lower." Here, the clear use of the plural by the Shruti is intended to negate Prarabdha as well.

उच्यतेऽज्ञैर्बलाच्चैतत्तदानर्थद्वयागमः ।
वेदान्तमतहानं च यतो ज्ञानमिति श्रुतिः।। ९९ ।।

द्वैत और अद्वैत मत, प्रारब्धन मतभेद ।
ग्रहण योग्य श्रुतियाँ वही, रहे न भेद-अभेद ।।९९।।

If the ignorant still arbitrarily maintain this, they will not only involve themselves in two absurdities, but will also

run the risk of foregoing the Vedantic conclusion. So, one should accept those Shrutis alone, from which proceeds true knowledge.

त्रिपञ्चाङ्गान्यथो वक्ष्ये पूर्वोक्तस्यैव सिद्धये।
तैश्च सर्वैः सदा कार्यं निदिध्यासनमेव तु।।१००।।

ज्ञान की निष्ठां के लिए, कहत हूँ पंद्रह अंग ।
सतत किये अभ्यास से, संभव ध्यान अभंग ।।१००।।

Now, for the attainment of the aforesaid (knowledge), I shall expound the fifteen steps by the help of which one should practice profound meditation at all times.

नित्याभ्यासादृते प्राप्तिर्न भवेत्सच्चिदात्मनः।
तस्माद् ब्रह्म निदिध्यासेज्जिज्ञासुः श्रेयसे चिरम्।।१०१।।

विनु अभ्यास न हो सके, सत्य स्वरूपी ज्ञान ।
जिज्ञासु चिर काल तक, करें ब्रह्म को ध्यान ।।१०१।।

The Atman that is absolute existence and knowledge cannot be realized without constant practice. So, one seeking after knowledge, should long meditate upon Brahman for the attainment of the desired goal.

यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः।
आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः।।१०२।।

ये क्रम से पंद्रह अंग बताये गए, जो यथावत ही रहने चाहिए,

काव्य बद्ध में क्रम भंग होता है अतः जस के तस लिख दिए।
यम,नियम,त्याग,मौन,देश,काल,आसन,मूलबंध,दृग्स्थिति ।।१०२।।

प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा।
आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात्।।१०३।।

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ।।१०३।।

The steps, in order, are described as follows: the control of the senses, the control of the mind, renunciation, silence, space, time, posture, the restraining root (Mulabandha), the equipoise of the body, the firmness of vision, the control of the vital forces, the withdrawal of the mind, concentration, self-contemplation and complete absorption.

सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः।
यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः।।१०४।।

जगत 'ब्रह्ममय' ज्ञान यह, इन्द्रिय संयम मूल ।
पुनि-पुनि कर अभ्यास अथ, 'यम' को मूल समूल ।।१०४।।

The restraint of all the senses by means of such knowledge as "All this is Brahman" is rightly called Yama, which should be practiced again and again.

सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः।।१०५।।

सजातीय वृत्ति की प्रवृत्ति, विजातीय का त्याग ।
परानंद नियमावली, ज्ञानी वृत्ति विराग ।।१०५।।

The continuous flow of only one kind of thought to the exclusion of all other thoughts, is called Niyama, which is verily the supreme bliss and is regularly practiced by the wise.

त्यागः प्रपञ्चरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्।
त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः।।१०६।।

चेतन रूप प्रपंच को, देखे रूप, अरूप ।
रूप त्याग ही त्याग वर, तत्क्षण मोक्ष अनूप ।।१०६।।

The abandonment of the illusory universe by realizing it as the all-conscious Atman is the real renunciation honored by the great, since it is of the nature of immediate liberation.

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा बुधः।।१०७।।

जिसे न पाकर मन सहित, वाणी लौट मौन ।
गति योगी की मौन तक, कैसे जाने कौन ?।।१०७।।

The wise should always be one with that silence wherefrom words together with the mind turn back without reaching it, but which is attainable by the Yogins.

वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते।
प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः।।१०८।।

ब्रह्म तो वाणीतीत है, वर्णन कौन समर्थ ?
यदि प्रपंच कथनीय, फिर भी शब्द रहित असमर्थ ।।१०८।।

इति वा तद्भवेन्मौनं सतां सहजसंज्ञितम्।
गिरा मौनं तु बालानां प्रयुक्तं ब्रह्मवादिभिः।।१०९।।

सहज मौन सत्पुरुष का, अशब्दतत्व ऋतु जान।
मौन गिरा का मूढ़ मता, के हित कहत सुजान ।।१०९।।

Who can describe That (i.e., Brahman) whence words turn away ? (So silence is inevitable while describing Brahman). Or if the phenomenal world were to be described, even that is beyond words. This, to give an alternate definition, may also be termed silence known among the sages as congenital. The observance of silence 40 by restraining speech, on the other hand, is ordained by the teachers of Brahman for the ignorant.

आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते।
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः।।११०।।

आदि अंत और मध्य में, जन नहीं कोई अन्य ।
व्याप्त जगत जिससे सतत, वही देश जनशून्य ।।११०।।

That solitude is known as space, wherein the universe does not exist in the beginning, end or middle, but whereby it is pervaded at all times.

कलनात्सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः।
कालशब्देन निर्दिष्टो ह्यखण्डानन्द अद्वयः।।१११।।

ब्रह्मा प्राणिन की सकल, कलना पल में होय ।
ब्रह्म अखंडानंद नाम, कालशब्द अथ सोय ।।१११।।

he non-dual (Brahman) that is bliss indivisible is denoted by the word 'time', since it brings into existence, in the twinkling of an eye all beings from Brahman downwards.

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम्।
आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम्।।११२।।

सतत ब्रह्म चिंतन सहज, जिस आसन में होय ।
आसन, सुख आसन वही, अन्य न आसन कोय ।।११२।।

One should known that as real posture in which the meditation on Brahman flows spontaneously and unceasingly, and not any other that destroys one's happiness.

सिद्धं यत्सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमव्ययम्।
यस्मिन्सिद्धाः समाविष्टास्तद्वै सिद्धासनं विदुः।।११३।।

विश्व अधिष्ठाता, अमर, सब प्राणिन का मूल ।
स्थित जिसमें सिद्ध जन, 'सिद्धासन' आमूल ।।११३।।

That, which is well known as the origin of all beings and the support of the whole universe, which is immutable and, in which the enlightened are completely merged, that alone is known as Siddhasana (eternal Brahman).

यन्मूलं सर्वभूतानां यन्मूलं चित्तबन्धनम्।
मूलबन्धः सदा सेव्यो योगोऽसौ राजयोगिनाम्।।११४।।

सब प्राणिन को मूल जो, चित स्थिर आधार ।
मूलबंध ही सेवनीय, राजयोग का सार ।।११४।।

That (Brahman) which is the root of all existence and on which the restraint of the mind is based is called the restraining root (Mulabandha) which should always be adopted since it is fit for Raja-yogins.

अङ्गानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते।
नो चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत् ।।११५।।

जेहि क्षण होवे चित्त सम, ब्रह्म में लीन समान ।
निश्चल सूखे वृक्ष सम, का समता नहीं नाम ।।११५।।

bsorption in the uniform Brahman should be known as the equipoise of the limbs (Dehasamya). Otherwise, mere

straightening of the body like that of a dried-up tree is no equipoise.

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकनी।।११६।।

लखो ज्ञानमय दृष्टि से, ब्रह्ममयी संसार ।
यही दृष्टि, महती महत, नासिकाग्र बेकार ।।११६।।

Converting the ordinary vision into one of knowledge one should view the world as Brahman itself. That is the noblest vision, and not that which is directed to the tip of the nose.

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्।
दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकनी।।११७।।

दृष्टा, दर्शन, दृश्य का होवे जहाँ अभाव ।
अग्र नासिका दृष्टि से, कोई नहीं प्रभाव ।।११७।।

Or, one should direct one's vision to That alone, where all distinction of the seer, sight, and the seen ceases and not to the tip of the nose.

चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात्।
निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते।।११८।।

ब्रह्म 'रूप के भाव से, चित्त वृत्ति अवरोध।
यही कथित संसार में, प्राणायाम प्रबोध।।१८।।

The restraint of all modifications of the mind by regarding all mental states like the Chitta as Brahman alone, is called Pranayama.

निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः।
ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरीरितः।।११९।।

जब प्रपंच निषेध, तब, रेचक प्राणायाम।
'ब्रह्म हूँ मैं' ऐसी वृति, पूरक प्राणायाम।।११९।।

ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः।
अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां घ्राणपीडनम्।।१२०।।

ब्रह्म वृत्ति अविचल, वही, कुम्भक प्राणायाम।
घ्राणपीडन निर्बुद्ध जना, समझत प्राणायाम।।१२०।।

The negation of the phenomenal world is known as Rechaka (breathing out), the thought, "I am verily Brahman", is called Puraka (breathing in), and the 44 steadiness of that thought thereafter is called Kumbhaka (restraining the breath). This is the real course of Pranayama for the enlightened, whereas the ignorant only torture the nose.

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चिति मज्जनम्।
प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुमुक्षुभिः।।१२१।।

चेतन को मन में डुबो, यही तो प्रत्याहार ।
जन मुमुक्ष, अभ्यास अथ, मर्म पूर्ण व्यवहार ।।१२१।।

The absorption of the mind in the Supreme Consciousness by realizing Atman in all objects is known as Pratyahara (withdrawal of the mind) which should be practiced by the seekers after liberation.

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात्।
मनसो धारणायैव धारणा सा परा मता।।१२२।।

करो ब्रह्म दर्शन वहीं, जहाँ-जहाँ मन जाए ।
स्थिर मन की धारणा, उत्तम समझी जाए ।।१२२।।

The steadiness of the mind through real-

ization of Brahman wherever the mind goes, is known as the supreme Dharana (concentration).

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः।
ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी।।१२३।।

'मैं ही ब्रह्म हूँ' सद्वृति, परमानंद महान ।
निरालम्ब स्थिति यही, 'ध्यान' शब्द से जान।।१२३।।

Remaining independent of everything as a result of the unassailable thought, "I am verily Brahman," is well known by the word Dhyana (meditation), and is productive of supreme bliss.

निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिर्ज्ञानसंज्ञकः।।१२४।।

नर्विकार ब्रह्मा-वृति, महती वृत्ति उपाधि ।
पूरण वृत्ति शून्यता, अथ यह ज्ञान समाधि।।१२४।।

The complete forgetfulness of all thought by first making it changeless and then identifying it with Brahman is called Samadhi known also as knowledge.

एवं चाकृत्रिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत्।
वश्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रयुक्तः स भवेत्स्वयम्।।१२५।।

स्वाभाविक आनंद का, तब तक कर अभ्यास।
जब तक एक ही निमिष में, चित्त न ब्रह्म के पास ।।१२५।।

The aspirant should carefully practice this (meditation) that reveals his natural bliss until, being under 46 his full control, it arises spontaneously, in an instant when called into action.

ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट्।
तत्स्वरूपं न चैकस्य विषयो मनसो गिराम्।।१२६।।

बहु साधन निर्मुक्त अब, सिद्ध वो योगीराट।
सत-स्वरूप, अशब्द अथ, दिव्य रूप एकराट ।।१२६।।

Then he, the best among Yogis having attained to perfection, becomes free from all practices. The real na ture of such a man never becomes an object of the mind or speech.

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयान्ति वै बलात्।
अनुसंधानराहित्यमालस्यं भोगलालसम्।।१२७।।

आलस भोग की वासना, लय, तम और विक्षेप।
बिघ्न समाधि के विकट, विविध बहुत आक्षेप ।।१२७।।

लयस्तमश्च विक्षेपो रसास्वादश्च शून्यता।
एवं यद्विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्मविदा शनैः।।१२८।।

रसास्वाद और शून्यता, आदि बिघ्न बलात ।
ब्रह्मविदा त्यागें बिघन, शनैः-शनैः संघात ।।१२८।।

While practicing Samadhi, there appear unavoidably many obstacles, such as lack of inquiry, idleness, desire for sense-pleasure, sleep, dullness, distraction, tasting of joy, and the sense of blankness. One desiring the knowledge of Brahman should slowly get rid of such innumerable obstacles.

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत्।।१२९।।

भाव वृत्ति से भाव तत्व, शून्य भाव शून्यत्व ।
पूर्णावृत्ति सों पूर्णता, लक्ष्य महत पूर्णत्वं ।।१२९।।

While thinking of an object the mind verily identifies itself with that, and while thinking of a void it really becomes blank, whereas by the thought of Brahman it attains to perfection. So one should constantly think of (Brahman to attain) perfection.

ये हि वृत्तिं जहत्येनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम्।
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः।।१३०।।

ब्राह्मी वृत्ति का महत्व

ब्राह्मी वृत्ति पुनीत को, त्याग दियो जिन लोग।
वृथा जियत, पशुवत लगत, मनुज जनम को योग।।१३०।।

Those, who give up this supremely purifying thought of Brahman, live in vain and are on the same level with beasts.

ये हि वृत्तिं विजानन्ति ये ज्ञात्वा वर्धयन्त्यपि।
ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये।।१३१।।

सत जन धन्य त्रिलोक में, वन्दनीय वे लोग।
वृत्ति ब्रह्म को जानकर, करत अनवरत योग।।१३१।।

Blessed indeed are those virtuous persons who at first have this consciousness of Brahman and then develop

it more and more. They are respected everywhere.

येषां वृत्तिः समावृद्धा परिपक्वा च सा पुनः।
ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः।।१३२।।

ब्रह्म वृत्ति जिनकी महत, और क्रमशः परिपक्व।
ब्रह्म भाव उनको मिले, ना केवल व्यक्तव्य।।१३२।।

Only those in whom this consciousness (of Brahman) being ever present grows into maturity, attain to the state of ever-existent Brahman; and not others who merely deal with words.

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
तेऽप्यज्ञानितमा नूनं पुनरायान्ति यान्ति च।।१३३।।

ब्राह्मी वृत्ति विहीन पर, वार्ता-ब्रह्म प्रवीण।
निश्चय ज्ञान विहीन वे, जनम-मरण आधीन।।१३३।।

Also those persons who are only clever in discussing about Brahman but have no realization, and are very much attached to worldly pleasures, are born and die again and again in consequence of their ignorance.

निमेषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना।
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः।।१३४।।

ब्रह्मादि, सनकादि और शुक देवादि समान ।
ब्रह्म वृत्ति बिन निमिष भी, रहत न संत महान ।।१३४।।

The aspirants after Brahman should not remain a single moment without the thought of Brahman, just like Brahma, Sanaka, Suka and others.

कार्ये कारणतायाता कारणे न हि कार्यता।
कारणत्वं स्वतो गच्छेत्कार्याभावे विचारतः।।१३५।।

वृत्ति का ज्ञान का साधन

कारण अनुगत कार्य में, कारण में नहीं कार्य ।
कार्य लोप, कारण कहाँ, रहत ना कार्य-अकार्य ।।१३५।।

The nature of the cause inheres in the effect and not vice versa; so through reasoning it is found that in the absence of the effect, the cause, as such also disappears.

अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरः।
द्रष्टव्यं मृद्घटेनैव दृष्टान्तेन पुनः पुनः।।१३६।।

ना वाणी का विषय जो, वही वस्तु तो शुद्ध।
माटी-घट दृष्टांत से, पुनि-पुनि सत्य प्रबुद्ध ।।१३६।।

Then, that pure reality (Brahman) which is beyond speech alone remains. This should be understood again and again verily through the illustration of earth and the pot.

अनेनैव प्रकारेण वृत्तिर्ब्रह्मात्मिका भवेत्।
उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम्।।१३७।।

वृत्ति हो जब ब्रह्ममय, शुद्ध चित्त तब होय।
शुद्ध चित्त, अन्तःकरण, ज्ञान प्रबुद्ध संजोय ।।१३७।।

In this way alone, there arises in the pure-minded, a state of awareness (of Brahman), which is, afterwards merged into Brahman.

कारणं व्यतिरेकेण पुमानादौ विलोकयेत्।
अन्वयेन पुनस्तद्धि कार्ये नित्यं प्रपश्यति।।१३८।।

पहले कारण कार्य से, विलग स्वरूप विलोक।
अनुगत रूप से सर्वदा, ज्ञान रूप आलोक ।।१३८।।

One should first look for the cause by the negative

method and then find it by the positive method, as ever inherent in the effect.

कार्ये हि कारणं पश्येत्पश्चात्कार्यं विसर्जयेत्।
कारणत्वं स्वतो नश्येदवशिष्टं भवेन्मुनिः।।१३९।।

कारण देखे कार्य में, कर्मों का फिर लोप।
कारण कार्य निःशेष, मुनि, दोनों से निर्लेप।।१३९।।

One should verily see the cause in the effect, and then dismiss the effect altogether. What then remains, the sage himself becomes.

भावितं तीव्रवेगेण वस्तु यन्निश्चयात्मना।
पुमांस्तद्धि भवेच्छीघ्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत्।।१४०।।

चिंतन जहाँ प्रगाढ़ हो, मनजु वही, बिन भ्रांत।
भ्रमर कीट-वत जानिये, विश्व विदित दृष्टांत।।१४०।।

A person who meditates upon a thing with great assiduity and firm conviction, becomes that very thing. This may be understood from the illustration of the wasp and the worm.

अदृश्यं भावरूपं च सर्वमेतच्चिदात्मकम्।
सावधानतया नित्यं स्वात्मानं भावयेद्बुधः।।१४१।।

भाव रूप चेतन मयी, अलख जगत सब जान ।
निज आत्मा का नित्य ही, चिंतन करत सुजान ।।१४१।।

The wise should always think with great care of the invisible, the visible, and everything else, as his own Self which is consciousness itself.

दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत्।
विद्वान्नित्यसुखे तिष्ठेद्धिया चिद्रसपूर्णया।।१४२।।

दृश्य को दृश्य अदृश्य मय, यह ज्ञानी को काम ।
सजग दृष्टि से नित्य प्रति, आत्मचिन्त्य अविराम ।।१४२।।

Having reduced the visible to the invisible, the wise should think of the universe as one with Brahman. Thus alone will he abide in eternal felicity with mind full of consciousness and bliss.

एभिरङ्गैः समायुक्तो राजयोग उदाहृतः।
किञ्चित्पक्वकषायाणां हठयोगेन संयुतः।।१४३।।

इन अंगों से युक्त का, राजयोग है नाम ।
अपरिपक्व मन चित्त जन,का हठ योग से काम ।।१४३।।

Thus has been described Raja-Yoga consisting of these steps (mentioned above). With this is to be combined Hatha-Yoga for (the benefit of) those whose worldly desires are partially attenuated.

परिपक्वं मनो येषां केवलोऽयं च सिद्धिदः।
गुरुदैवतभक्तानां सर्वेषां सुलभो जवात्।।१४४।।

परिपक्व मन-चित्त जन, सिद्धि सुलभ सामर्थ्य ।
गुरु और ईश्वर भक्त को, सुगम, सिद्धि, दिव्यर्थ ।।१४४।।

For those whose mind is completely purified this (Raja-Yoga) alone is productive of perfection. Purity of the mind, again, is speedily accessible to those who are devoted to the teacher and the Deity.

आत्मबोधः

तपोभिः क्षीणपापानां शांतानां वीतरागिणाम्।
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते ।।१।।

आत्म-बोध तिन हित, जिज्ञासु, जन मुमुक्ष जो ज्ञान पिपासु ।
वृंत्ति तपस्वी, पाप विहीना, शांत वीतराग चित कीना ।।१।।

This book on Self knowledge is being presented to those who have purified themselves through austerities, who are peaceful by disposition, who are free from cravings and are desirous of liberation.

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम्।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिद्ध्यति।।२।।

आत्म-ज्ञान बिनु मोक्ष न होई, आत्म-बोध एक साधन सोई ।
जस बिनु अनल पंके नहीं भोजन, तस बिनु ज्ञान न मोक्ष मिलत जन ।।२।।

Just as the fire is the direct cause for cooking, so without Knowledge no liberation can be had. Compared

with all other forms of discipline, Knowledge of the Self is the one direct means for liberation

अविरोधितया कर्म नाविद्या विनिवर्तयेत् ।
विद्याविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ।।३।।

करम सों होत न कोऊ सुजाना, करम सों मिटत नाहीं अज्ञाना ।
केवल आत्म-ज्ञान उपचारा, जस उजास नासत अँधियारा ।।३।।

Action cannot destroy ignorance, for it is not in conflict with or opposed to ignorance. Knowledge does verily destroy ignorance as light destroys deep darkness.

अवच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव।।४।।

आत्म-ज्ञान परिछिन्न हैं तिनको, ज्ञान विहीन जना, जो उनको,
जलद हटत रवि होत उजासू, ज्ञान उदय आतमा प्रकासू ।।४।।

The Self appears to be finite because of ignorance. When ignorance is destroyed the One Self truly shines by itself, like the Sun when the clouds pass away.

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्विनिर्मलम्।
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत्।।५।।

ज्ञानाभ्यास सतत करि जोई, निर्मल जीव ज्ञान मय होई ।
कटकरेणु वत स्वतः उज्ज्वला, ब्रह्म-ज्ञान अथ जीव निर्मला ।।५।।

Constant practice of knowledge renders the ignorant individual pure. Knowledge then relegates itself – as does the powder of the 'Kataka-nut' after it has cleansed the muddy water.

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यसद्भवेत्।।६।।

जगत स्वप्न-वत, मोह प्रबंधा, राग-द्वेष के संकुल बन्धा ।
जेहि क्षण सत्य ज्ञान होई जीवा,असत मिटत सत भवत सजीवा ।।६।।

The world which is full of likes and dislikes, is like a dream. It appears to be real, as long as it lasts, but is falsified when one awakens to reality.

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम्।।७।।

ब्रह्म अनन्य सृष्टि आधारा, भूलत सत जग लागत सारा ।
सीपी रजत भ्रमित तदरूपा, असत जगत, सत-ब्रह्म अरूपा ।।७।।

The universe appears to be real(Satyam) so long as Brahman, the substratum of all creation, is not realized. This appearance is similar to the illusion of silver in the mother-of-pearl.

उपादानेऽखिलाधारे जगन्ति परमेश्वरे।
सर्गस्थितिलयान्यान्ति बुद्बुदानीव वारिणि।। ८ ।।

उपादान प्रभु अखिलाधारे, सृजन, सृष्टि, स्थिति लय सारे ।
जल में एक बुलबुले जैसा,जगत क्षणिक, क्षण-माण है, ऐसा ।।८।।

Like bubbles in the water, the worlds rise,ShThAnam exist and dissolve in the Supreme Self, which is the material cause and the support of everything.

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्येविष्णौ प्रकल्पिताः।
व्यक्तयो विविधाः सर्वाहाटके कटकादिवत्।। ९ ।।

बहू भूषन पर कनक आधारा, तस बहुरूपी जगत पसारा ।
व्यापक अखिलाधार नियंता, से तस जनमत जगत अनंता ।।९।।

All the various entities are projected onto the substratum just as the different ornaments are all appearances projected on the same gold. The eternal and all-pervading

substratum has the nature is existence and consciousness.

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे केवलो भवेत्।।१०।।

व्यापक नभ अति अगम अरूपा, बहु उपाधि भासत तदरूपा ।
हृषीकेश विभु, लगत अनेका, ज्ञान उजास दिखत एकरूपा ।।१०।।

In a similar way like space, the all pervading Lord associated with various conditions (Upadhis). Their different conditions appears as if belonging to the Self, but when they disappear it is just one.

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत्।।११।।

जाति,वर्ण,आश्रम,रंग-रूपा, भेद विभेद विभिन्न सरूपा ।
आत्म लीन हुइ जेहि पल जोया, रंग,गंध जस,तस ही तोया ।।११।।

By Its association with different conditions (Upadhis) attributes such as status and stages in life are super-imposed on the Self in the same way as water becomes flavoured or.coloured by things added to it.

पञ्चीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसञ्चितम्।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते।।१२।।

पञ्च तत्व मय जीव शरीरा, जनमत प्रारब्धन जंजीरा।
सुख-दुःख भोगन देह निमित्ता, भोग, भोग हित दैहिक सत्ता।।१२।।

The physical body, created from the (five) compounded elements, is created through actions (of one's own previous lifetimes). It is the physical medium (of experience) for feelings of pleasure and pain.

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम्।।१३।।

प्रञ्च प्राण, मन, बुद्धि समन्वय, दसों इन्द्रियां, सूक्ष्म देह लय।
सूक्ष्म देह की इनसे सत्ता, भाव ज्ञान, अनुभूति इयत्ता।।१३।।

The five vital airs, the ten organs mind and the individuality originate from the (five) primal elements. Together they constitute the subtle body and are the instruments for gathering (different kinds of) experiences.

अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते।
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ।।१४।।

आत्म-ज्ञान बिनु जनमत देहा, पुनरपि जनम-मरण पुनि देहा ।
कारण देहा, कारण मूला, अथ अज्ञान ही मूल समूला ।।१४।।

Beginningless Ignorance defies categorization and is spoken of as the casual body. Know for certain that the Self is different from these three conditions (physical, subtle, and casual).

पञ्चकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः ।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा।।१५।।

रंग विहीन स्फटिक जैसे, जस हो रंग दिखत है वैसे ।
तस ही शुद्ध आतमा बिम्वित, जस हौं पञ्च कोष प्रतिबिंबित ।।१५।।

A colourless crystal acquires a bluish tinge in association with blue cloth, etc. In the same way, the pure Self Identified with the five coverings (as it were), appears as non different from them.

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यावघाततः।
आत्मानमान्तरं शुद्धं विविच्च्यात्तण्डुलं यथा।।१६।।

आत्म स्वरूप शुद्ध अन्वेषा, भ्रमित आवरण पाँचों कोषा ।
विलग धान भूसा सम जोई, तत्व ज्ञान पावत जन सोई ।।१६।।

Just as one pounds the rice to separate the associated husk, bran, etc., one should one should sort out the Pure self from its (apparent) coverings through reason and discriminative enquiry.

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिंबवत्।।१७।।

व्यापक सर्व आतमा यद्यपि, प्रतिबिंबित नहीं एक समान अपि ।
अन्तर्निहित ज्ञान उद्भासित, स्वच्छ धरातल जस प्रतिबिंबित ।।१७।।

Although all-pervading, the (conscious) Self does not shine uniformly everywhere. It manifests only in the (presence of) mind like a reflection appearning in a clean surface (of the mirror).

देहेंद्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम्।
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा।।१८।।

इन्द्रिय देह, बुद्धि, मन प्रकृति, भाव-साक्षी अति उत्तम प्रवृत्ति ।
जस नृप होत मात्र संचालक, आत्म तत्व तस आत्म-नियामक ।।१८।।

Know the Self as distinct from the material associations like body, senses, mind and individuality. It is ever the witness of all their activities, like a king (whose presence inspires others to act).

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम्।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी।।१९।।

यद्यपि बादल चलत अकासा, चलत चन्द्रमा, अस अभासा ।
इन्द्रिन यथा, आत्मवत जाने, अज्ञानी अथ तत्व न जाने ।।१९।।

The moon appears to be moving when the clouds float around in the sky. Likewise, ignorant people attribute the activity of the sense organs to the (changeless) Self.

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः।
स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः।।२०।।

इन्द्रिय तन-मन करम अपारा, आत्म चेतना मूल अधारा ।
जस जन निर्भर रवि उजियारा, करम करत रवि ज्योति पसारा ।।२०।।

The body, senses, mind, and individuality, depend on the conscious Self for carrying on their individual activities, in the same way as people depend on sunlight (for engaging in activity).

देहेन्द्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि।
अध्यस्यंत्यविवेकेन गगने नीलतादिवत्।।२१।।

दीखत नभ बहु रंग विधाना, कारण दोष दृष्टि अज्ञाना ।
देह इन्द्रियन के सब करमा, समुझत मूढ़ आतमा धरमा ।।२१ ।।

Just as the ignorant ones attribute blue colour to the sky, people superimpose physical and sensory activities or qualities onto the pure existent and conscious Self.

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि।
कल्प्यंतेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादि यथाम्भसः।।२२।।

जदपि चन्द्र स्थिर नभ मांही, लगत चलत चंचल जल मांही ।
अस माया मति भ्रम अज्ञाना, लगत, आतमा करम प्रधाना ।।२२।।

The moon reflected in water appears to move when the water is disturbed. Likewise agency and other attributes of the mind are mistakenly superimposed the Self.

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्त्तते।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद् बुद्धेस्तुनात्मनः।।२३।।

सुख-दुःख, इच्छा, राग अनेका, भासत जब तक जगत विवेका ।
जब सुषुप्ति, आभास विहीना, सिद्ध आतमा, करम न कीना ।।२३।।

Attachment, desire, pleasure, pain, etc., are per-

ceived to exist only when the mind is active. They are not perceived in deep sleep when the mind ceases. Therefore all those attributes belong to the mind alone and not to the Atman.

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता।
स्वभावः सच्चिदानंदनित्यनिर्मलतात्मनः।।२४।।

जल शीतल, रवि ज्योति स्वरूपा, उष्म अग्नि स्व वृत्ति रूपा ।
अस ही आतमा वृत्ति उज्ज्वला, सत-चितआनंद नित्य निर्मला ।।२४।।

Brightness is the nature of the sun, coolness of water and heat of fire. Similarly the nature of the ever pure Self is existence, consciousness and fullness,

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम्।
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते।।२५।।

आत्म-तत्व अस्तित्व चेतना, काल, बुद्धि, मन वहाँ एक ना ।
मन बुद्धि को सकल पसारा, बिनु विवेक 'मैं' और 'ममकारा'।।२५।।

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति।
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति।।२६।।

अहं भाव भ्रम मूल अहंता, आत्म-तत्व एकमेव नियंता ।
आत्म तत्व निरपेक्ष, अकर्ता, मन बुद्धि ही कर्ता- भर्ता ।।२६।।

When the Self's nature of existence and consciousness is indiscriminately associated with the mind's nature of thinking – there arises the notion of "I know".

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वाभयं वहेत्।
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातश्चेन्निर्भयो भवेत्।।२७।।

सर्प को भ्रम रसरी में होई, जीव भ्रमित, भयभीत भी होई ।
आत्मरूप निज जीव न जाना,आत्म-ज्ञान बिनु भ्रम विधि नाना।।२७।।

Like a person mistaking the rope for a snake, the one who mistakes the Self to be an individual is overcome by fear. If one recognizes "I am the Absolute Self and not the individual self", he attains freedom from fear.

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनींद्रियाणि हि।
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते।।२८।।

दिखत पात्र जब दीप प्रकासा, अथ चेतन से जड़ आभासा ।
शुद्ध रूप चैतन्य प्रकासा, जड़, मन-बुद्धि करत उजासा ।।२८।।

Like a lamp illuminating objects like pots, so also the Self illumines the mind, sense organs, etc. The Self is not lighted by those objects as they are inert (and incapable of knowing)

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः।
न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते।।२९।।

स्वयं प्रकाशित आतम सत्ता, स्वयं आत्म-भू आत्म इयत्तां ।
ज्वलित दीप जो हो पहले से, नहीं प्रयोजन अन्य जले से ।।२९।।

A lighted-lamp does not need another lamp to illumine itself. So too, the Self which is the nature of consciousness f needs no entity other (than itself) to cognize it.

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेतीति वाक्यतः।
विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः।।३०।।

परमात्मा जीवात्मा दोऊ, एक अभिन्न, सों भिन्न न कोऊ ।
महावाक्य वेदन के कथ्या, नेति-नेति से पुष्टित तथ्या ।।३०।।

Negating all the conditions with the help of the statement like 'It is not this, It is not this', may one recognize the oneness of the individual self and the Absolute Self, as revealed by (Vedantic) statements.

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम्।
एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम्।।३१।।

कारण, सूक्ष्म देह स्थूला, जैसे जल का एक बुलबुला ।
शुद्ध ब्रह्म चैतन्य स्वरूपा, पूर्ण तत्व बिनु देह अरुपा ।।३१।।

Like bubbles, all perceivable entities beginning from body upto Ignorance, are perishable. May one recognize "I am the Absolute Self, distinct from them (by nature).

देहान्यत्वान्न मे जन्मजराकार्श्यलयादयः।
शब्दादिविषयैः सङ्गो निरिन्द्रियतया न च।।३२।।

जन्म, जरा, मृत्यु आबद्धा, ना मैं देह न काल निबद्धा ।
ज्ञानिन्द्रिन सों परे की सता, निरासक्त परब्रह्म इयत्ता ।।३२।।

Being distinct from mind, I free from birth, old age, weakness and death. Being distinct from the sense organsa, i have no association with objects like sounds, etc.

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादिश्रुतिशासनात्।।३३।।

राग, द्वेष, भय, दुःख विमुक्ता, मन से परे, न प्राण से युक्ता ।
मन विहीन मैं सत्य स्वरूपा, शास्त्र कहत अथ तथ्य अनूपा ।। ३३ ।।

Being distinct from mind, I am free from sorrow, attachment, hate, and fear. According to the scriptural declaration, the Self is "distinct from breath, and mind, Pure, etc."

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः।
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः।। ३४।।

निर्गुण, निर्मल, बिनु आकारा, निर्विकल्प, शुचि बिना विकारा ।
निर्विकार,नित,मुक्त निरंजन,शाश्वत,निष्क्रिय आत्म आनंदम ।। ३४।।

I am eternal, (ever)free of attributes, actions, thoughts, and blemish. I am ever liberated, free from (all) change, form, and impurities.

अहमाकाशवत्सर्वबहिरंतर्गतोऽच्युतः ।
सदा सर्वसमः शुद्धो निःसङ्गो निर्मलोऽचलः।। ३५।।

वृहत व्योम वत आत्म पसारा, अंतर्बहिर वस्तु विस्तारा ।
आत्म तत्व मैं शुद्ध असंगा, चिदाकाश नित, सत्व अभंगा ।। ३५।।

Like space, I am present on the inside and outside of all things. I am immutable, eternal, uniform, (ever) accomplished, unconnected, pure and immovable.

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम् ।
सत्यं ज्ञानमनंतं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ।।३६।।

शुद्ध विमुक्तं एक अखंडा, मैं ही वस्तुतः नित्यानंदा ।
मैं असीम अद्वैत्य अनन्या, शाश्वत पूर्ण ब्रह्म महे धन्या ।।३६।।

I am verily that Supreme Brahman alone which is Eternal, Pure and Free, One, partlessly full, non-dual. and of the nature of limitless existence and consciousness.

एवं निरंतरकृता ब्रह्मैवास्मीति वासना।
हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम्।।३७।।

सतत कहो कि 'मैं ही ब्रह्मा', संस्कार अथ गहरे गम्या ।
औषधि जैसे रोग नसावे, ब्रह्म ज्ञान अज्ञान नसावै ।।३७।।

Constantly repeated, the knowledge that I am indeed Brahman becomes deeply ingrained, and removes ignorance and error, in the same way as medicine (overcomes) disease.

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेंद्रियः।
भावयेदेकमात्मानं तमनंतमनन्यधीः।।३८।।

स्थिर चित एकांत आसीना, इन्द्रिय संयम, चाह विहीना ।
ध्यान आतमा पर धरि धीरा, जो असीम अद्वैत गंभीरा ।।३८।।

One should contemplate on the one infinite self, seated in an isolated place, free of desires, controlled senses and non-distracted mind.

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः।
भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा।।३९।।

वस्तु परक यह जगत पसारा, आत्म परक सुधि जना विचारा ।
सतत आतमा पर धरि ध्याना,जो सत शुद्ध है गगन समाना ।।३८।।

The wise one should, by knowledge merge the entire world-of-objects in the self alone and constantly contemplate upon the Self thqt is as pure as the sky.

रूपवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित्।
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ।।४०।।

ब्रह्म ज्ञान वेत्ता जिन होई, नाम, रूप सब तजत हैं सोई ।
वे परिपूर्ण चिदानंद रूपा, रहत अवष्ठित आत्म स्वरूपा ।।४०।।

The knower of the absolute discards all names and forms etc., and remains (purely as the self) in nature of limitless existence and consciousness.

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परे नात्मनि विद्यते।
चिदानन्दैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि।।४१।।

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय को भेदा, परम तत्व में सकल अभेदा ।
स्वयं दीप्त परमात्म आलोका, चिदानंद अस्तित्व है एका ।।४१।।

There are no distinctions such knower, knowing, or known, in the supreme self, for it is nothing other than the nature of consciousness and fullness. It is illumined solely by itself.

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते।
उदितावगतिर्ज्वाला सर्वा ज्ञानेंधनं दहेत्।।४२।।

'मैं हूँ ब्रह्म' ध्यान धरि ध्याना, जरत अज्ञाना, उभरत ज्ञाना ।
जस अग्नि लकड़ी में वासा, संघर्षण सों प्रगट प्रकासा ।।४२।।

When the Self is contemplated upon in the same way that wooden parts (rubbed together creates fire), knowledge results, burning down the firewood of ignorance.

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसंतमसे हृते।
तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव।।४३।।

ज्ञानोदय का अरुण सबेरा, मिटत तबहिं, अज्ञान अँधेरा ।
उदित सूर्य ज्योति जस होई, तस ही आत्म उजागर होई ।।४३।।

When the dawn of knowledge has removed the darkness of ignorance, the self emerges revealing itself in the same way as the sun (reveals itself).

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्तवदविद्यया।
तन्नाशेऽप्राप्तवद्भाति स्वकंठाभरणं यथा।।४४।।

आतमा तो सततं प्राप्तव्या, पर बिनु ज्ञान, नहीं ज्ञातव्या ।
कनक आभूषण यद्यपि ग्रीवा, किन्तु भूल वश खोजत जीवा ।।४४।।

Even when the self is ever available (here and now), it is missed as it were due to ignorance. When ignorance disappears, the self appears to be found, just as an ornament on one's neck (seems to be lost and then found).

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रांत्या कृता ब्रह्मणि जीवता।
जीवस्य तात्त्विके रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तति।।४५।।

भ्रम वश वृक्ष मनुज वत लागे, तस ही ब्रह्म जीव वत लागे ।
भ्रम वश ब्रह्म जीव आभासा, ज्ञान होत सत ब्रह्म उजासा ।।४५।।

The universal self appears to become an individual through ignorance, in the same way that a lamp post appears to be a ghost. Individuality disapears when one's real nature is realised to be the universal self.

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमञ्जसा।
अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत्।।४६।।

मैं, मेरा ममकार अहंता, आत्म ज्ञान अज्ञान को हंता ।
उदित रवि जस तिमिर विछिन्ना, दिशा बोध फिर होत विभिन्ना ।।४६।।

The ignorance represented by the notions 'I' and 'Mine' is destroyed by knowledge that results from realising the true nature of the Self, just as right information dispels confusion about directions (like east and west).

सम्यग्विज्ञानवान्योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम्।
एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा।।४७।।

अखिल जगत निज आत्म स्वरूपा, योगी ज्ञान चक्षु सम रूपा ।
सम्यक ज्ञान व् सम्यक दृष्टि, आपुनि जस देखत सब सृष्टि ।।४७।।

The knower who is spiritually adept sees the entire universe as contained in the self, and sees the one self as all, through the eyes of knowledge.

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्यन्न विद्यते।
मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते।।४८।।

देखत जगत आत्म-वत योगी, सम्यक दृष्टा सत्य प्रयोगी ।
माटी घट माटी ही मानो, तस ही आत्म वत सबको जानो ।।४८।।

The entire universe is verily the self.. Nothing other than the self exists (in reality). All clay pots and jars are nothing but clay, so too the knower sees everything (in creation) as one's own self.

जीवन्मुक्तस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत्।
स सच्चिदादिधर्मत्वं भेजे भ्रमरकीटवत्।।४९।।

कारण-सूक्ष्म-देह-स्थूला, जीवन मुक्त के मिटत समूला ।
स्वयं सच्चिदानंद स्वरूपा, भ्रमर कीट वत ही तदरूपा ।।४९।।

The liberated one, endowed with Self-knowledge, gives up the qualities of the conditions that were previously attributed to him (through ignorance). Being in the nature of Existence Consciousness and Fullness, he becomes Brahman like the larva (that transforms into a bee.)

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान्।
योगी शांतिसमायुक्त आत्मारामो विराजते।।५०।।

मोह उदधि जिन उतरे पारा, राग द्वेष के निवृत पसारा ।
योगी शान्ति समा अस युक्ता, आत्म-राम में रमे संयुक्ता ।।५०।।

After crossing the ocean of delusion and killing the monsters of likes and dislikes, the spiritual adept is united with peace and shines, revelling in his own (true) self.

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः।
घटस्थदीपवच्छश्वदंतरेव प्रकाशते।।५१।।

तजत मोह, माया और रागा, जीवन मुक्ता जगत विरागा ।
आत्मानंद प्रकाशित होई, जस घट भीतर दीपक जोई ।।५१।।

Letting go the dependence on external impermanent pleasures and established in the joy of (freedom that is) the self, one shines brightly from within like a lamp placed inside a jar.

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत्।।५२।।

योगी जीवन मुक्त असंगा, लिप्त न नेकहूँ जगत प्रसंगा ।
रहत व्योम, वायु वत योगी, ब्रह्म योग, पर जगत वियोगी ।।५२।।

Even though the contemplative one appears along with (apparent) conditions, he remains untouched like space. The all knowing one appears like a fool, free from attachment and wandering about like the wind.

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः।
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा।।५३।।

सकल उपाधि आदि नसावे, सतत ब्रह्म को ध्यानी ध्यावे ।
जल में जल,ज्योति में ज्योति,ब्रह्म में ब्रह्म विलय गति होती।।५३।।

When the (apparent) conditions are resolved, the contemplative one is totally absorbed in the all-pervading self, like water merging into water, space unto space and light unto light.

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम्।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५४।।

ब्रह्म परात्पर अंतिम सत्ता, तासों परे न कोई इयत्ता ।
ब्रह्म ज्ञान सों परे न ज्ञाना, पूर्ण-पूर्ण परिपूर्ण प्रमाना ।।५४।।

Realise That to be Brahman, the beyond which there is no further attainment, the fullness beyond which there is no higher fullness, and whose knowledge beyond which there is no higher knowledge.

यद्दृष्ट्वा नापरं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः।
यज्ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५५।।

ब्रह्म ज्ञान जानत सत सोई, ताको पुनि कोऊ जनम न होई ।
दृश्य, पावना ज्ञान न शेषा, ब्रह्म ज्ञान महि महत विशेषा ।।५५।।

Realise That to be Brahman, the vision beyond which there is nothing to be seen, becoming which one has no further birth, and the knowledge beyond which there is nothing more to be known.

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानंदमद्वयम्।
अनंतं नित्यमेकं यत्तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५६।।

ब्रह्म अद्वैत्य, अनन्य, असीमा, शाश्वत, सत-चित-आनंद महिमा ।
व्यापक ब्रह्म, अनंत अनादि, एकमेव परब्रह्म उपाधि ।।५६।।

Realize that to be Brahman which is the nature of non-dual existence, consciousness and fullness; which is Infinite, eternal and one; and which is limitless from above, below and sideways in every direction.

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदांते लक्ष्यतेऽव्ययम्।
अखंडानंदमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५७।।

अव्यय ब्रह्म, अद्वैत्य है तथ्या,अगम, अदृश्य,उपनिषद कथ्या ।
'नेति-नेति' पावत सत रूपा, एक अखण्ड, आनंद स्वरूपा ।।५७।।

Realize that to be Brahman which is Non-dual, Indivisible, Full, One, and which is revealed through the implied sense of Vedanta statements that negate every thing other (than oneself).

अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदलवाश्रिताः।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवंत्यानंदिनोऽखिलाः।।५८।।

ब्रह्म अखंडानंद एकमेवा, कण भर शक्ति ही पावत देवा ।
क्षमता भर, देवों की क्षमता, तदनुसार देवों की प्रभुता ।।५८।।

Entities from Brahma onwards, depend on just a particle of the fullness of Brahman, and enjoy it in differeing pro-

portions in keeping with their status (relative to each other).

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारश्चिदन्वितः।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले।।५९।।

ब्रह्म तत्व सब सृष्टि पसारा, व्यापक अणु-कण अपरम्पारा ।
क्षीरे घृत जस, तस ही ब्रह्मा, अणु-कण-कण, ब्रह्माण्ड अगम्या ।।५९।।

All objects are associated with Brahman. All actions are infused with it; therefore Brahman is all pervading as butter permeates all of milk.

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।६०।।

ब्रह्म सूक्ष्म ना ही स्थूला, दीर्घ न लघु, परिवर्तन शीला ।
रंग-रूप गुण नाम विहीना, को समरथ जी वर्णन कीना ।।६०।।

Realise that to be Brahman which is neither subtle nor gross; neither short nor long; free from birth and change; free form, qualities, colour and name.

यद्भासा भास्यतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते।
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।६१।।

सकल देव गण ज्योतित जिससे, ब्रह्म कदापि न ज्योतित उनसे ।
परम ब्रह्म ज्योतित निज सत्ता, एकमेव पर ब्रह्म इयत्ता ।।६१।।

Realize that to be Brahman through whose light entities like the Sun and the Moon are illuminated, and which is not (an object) illuminated by them.

स्वयमंतर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत्।
ब्रह्म प्रकाशते वह्नि प्रतप्तायसपिंडवत्।।६२।।

ज्योतित ब्रह्म स्वयं ब्रह्माण्डे, ज्योतित दिखत तभी तो पिण्डे ।
तपत लौह वत चमकत कोई, तेज ब्रह्म को दिखत है सोई ।।६२।।

Pervading and illumining the entire universe from within and without, the universal self shines by Itself like (the fire that permeates and illumines) a red-hot iron-ball.

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्नकिञ्चन।
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका।।६३।।

ब्रह्म भिन्न सर्वथा अनोखा, तासों पृथक न कण भर देखा ।
ब्रह्म सत्व बिन दिखत जो तथ्या, मृग मरीचिका के सम मिथ्या ।।६३।।

Brahman is different (in nature) from the universe.

There exists nothing that is different from Brahman. Any object that seems different from Brahman is apparent (in nature), like the mirage (illusion) in the desert.

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत्।
तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानंदमद्वयम्।।६४।।

ब्रह्म अद्वैत्य सच्चिदानंदा, बिन सत ज्ञान न सत्य आनंदा ।
जो कछु दिखत व् परत सुनाई, सकल परम प्रभु की प्रभुताई।।६४।।

All objects perceived, or heard, have no existence independent of Brahman. Attaining the knowledge of essential reality, one sees them as the universal self, (whose nature is) non-dual existence. consciousness and fullness.

सर्वगं सच्चिदानन्दं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वंतं भानुमंधवत्।।६५।।

सार्वभौम अस्तित्व नियंता, ज्ञान चक्षु सों दिखत अनंता ।
नयन हीन को सूरज जैसे, ज्ञानहीन को ब्रह्म भी वैसे ।।६५।।

Just as the blind do not see the resplendent sun ,the omnipresent self who is (the nature of) existence and consciousness is unseen by the eyes of the ignorant. It is clearly perceived (only) through the eyes of knowledge;.

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः।
जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम्।।६६।।

श्रवण मनन निदिध्यासन ध्याना, पावक ज्ञान सों, पावन ज्ञाना ।
पावक ज्ञान तपत जस सोना, अथ तप 'अहं ब्रह्मास्मि' होना ।।६६।।

When heated in the fire of knowledge kindled by study of scriptures, enquiry and contemplation, the individual becomes free of all impurities, and shines independently like gold (that has a lustrous shine)

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोपहृत्।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति भासयतेऽखिलम्।।६७।।

ज्ञान सूर्य सम आत्म प्रकासा, हृद नभ उदित ज्ञान उद्भासा ।
तम अज्ञान विनासत सोई, अखिल सृष्टि ज्योतिर्मय होई ।।६७।।

The self which is the sun of Knowledge rises in the space of the heart and destroys the darkness of the ignorance. It is omnipresent, supports all, and shines (independently and) makes everything else shine.

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं
शीतादिहृन्नित्यसुखं निरञ्जनम् ।

यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः
स सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत्।।६८।।

दिशा, देश और काल विमुक्ता, शीत, उष्ण आभास ना भुक्ता ।
स्वात्म-तीर्थ ध्यानी, भव मुक्ता, ब्रह्म ज्ञान परब्रह्म संयुक्ता ।।६८।।

Unconcerned about directions, space, and time etc., one makes a pilgrimage to his own self which is omnipresent, free from (opposites like heat and) cold etc., which is ever full and untaintainted. (Knowing thus,) one becomes all knowing, omnipresent, actionless and immortal.



निर्वाणषट्कम्

मनो बुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाऽहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।१।।

मैं मन, बुद्धि, न चित्त अहंता । न मैं धरनि न व्योम अनंता ।।
मैं जिह्वा ना, श्रोत, न वयना । न ही नासिका ना मैं नयना ।।
मैं ना अनिल, न अनल सरूपा । मैं तो ब्रह्म रूप, तदरूपा ।।
चिदानंदमय ब्रह्म सरूपा । मैं शिव-रूपा, मैं शिव-रूपा ।।१।।

I am not mind, intelle ct, ego and the memory. I am not the sense of organs (ears, tongue, nose, eyes and skin). I am not the five elements (sky or ether, earth, light or fire, the wind and the water). I am supreme bliss and pure consciousness, I am Shiva, I am all auspiciousn ess, I am Shiva.

न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायु-र्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः ।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम।।२।।

न गतिशील, न प्राण आधारा । न मैं वायु पांच प्रकारा ।।
सप्त धातु, पद, पाणि न संगा । अन्तरंग न ही पाँचों अंगा ।।
पंचकोष ना, वाणी रूपा । मैं तो ब्रह्म रूप तदरूपा ।।
चिदानंदमय ब्रह्म सरूपा । मैं शिव-रूपा, मैं शिव-रूपा ।। २।।

I am not Prana (energy) n or five vital airs (PanchVayu), nor the seven essentia l material(sapta dhatu), nor the five sheaths of the body (pancha kosha). I am not the organ of speech, nor hand nor the leg, nor the organs of procreation or the elimination (anus). I am supreme bliss and pure consciousness, I am Shiva, I am all auspic iousness, I am Shiva.

न मे द्वेषरागौ न मेोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
न धर्मो न चाऽर्थो न कामो न मोक्षश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।। ३।।

ना मैं राग, न द्वेष, न नेहा । ना मैं लोभ, मोह, मन मोहा ।।
मद-मत्सर ना अहम् विकारा । ना मैं, ना मेरो ममकारा ।।
काम, धर्म, धन मोक्ष न रूपा । मैं तो ब्रह्म रूप तदरूपा ।।
चिदानंदमय ब्रह्म सरूपा । मैं शिव-रूपा, मैं शिव-रूपा ।। ३।।

I have no hatred or dis like, neither greed nor liking, no delusion, I have n o pride or haughtiness, nor jealousy. I have no duty to perform(dharma), no desire for any wealth or pleasure (kama), I have no liberation (moksha) either. I

am supreme bliss and pure consciousness, I am Shiva, I am all auspiciousness, I am Shiva.

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।४।।

ना मैं पुण्य न पाप न कोई। ना मैं सुख-दुःख जड़ता जोई।।
ना मैं तीर्थ, मन्त्र, श्रुति, यज्ञाः। ब्रह्मलीन मैं ब्रह्म की प्रज्ञा।।
भोक्ता, भोजन, भोज्य न रूपा। मैं तो ब्रह्म रूप तदरूपा।।
चिदानंदमय ब्रह्म सरूपा। मैं शिव-रूपा, मैं शिव-रूपा।।४।।

I have neither virtue, nor vice. nor pleasure or pain, I do not need mantras(sacred chants), nor pilg rimages. nor scriptures (Vedas), rituals or sacrifices (Yagyas). I am neither the enjoyed nor the enjoyer, nor enjoyment. I am the supreme auspiciousness of the form of consciousness-bliss(chidananda Rupah). I am the auspiciousness I am supreme bliss and pure consciousness, I am Shiva, I am all auspiciousness, I am Shiva.

न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता च जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।५।।

ना मैं मरण भीत भय भीता। ना मैं जनम लेत ना जीता।।
मैं पितु, मातु, गुरु, ना मीता। ना मैं जाति-भेद कहूँ कीता।।

ना मैं मित्र बन्धु अपि रूपा । मैं तो ब्रह्म रूप तदरूपा ।।
चिदानंदमय ब्रह्म सरूपा । मैं शिव-रूपा, मैं शिव-रूपा ।।५।।

I have no fear of death, nor do I have death. No doubt about my existence, nor distinction of caste. I have no father or mother, I have no birth. I have no relatives, nor friend, nor the guru, nor the disciple. I am pure knowledge and supreme bliss, I am Shiva, I am all auspiciousness, I am Shiva.

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
न चासङ्गतं नैव मुक्तिर्न मेयश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।६।।

निर्विकल्प आकार विहीना । मुक्ति, बंध-बंधन सों हीना ।।
मैं तो परमब्रह्म अविनाशी । परे, परात्पर परम प्रकाशी ।।
व्यापक विभु मैं ब्रह्म अरूपा । मैं तो ब्रह्म तेरा तदरूपा ।।
चिदानंदमय ब्रह्म सरूपा । मैं शिव-रूपा, मैं शिव-रूपा ।।६।।

I am formless and devoid of all dualities I exist everywhere and pervade all senses Alwa ys I am the same, I am neither free nor bonded I am pure knowledge and supreme bliss, I am Shiva, I am all auspiciousness, I am Shiva.



मनीषापञ्चकम्

संत महत क्यों कहते हो, परे हटो तुम जाय ?
कैसी आपु को आपु से, कोई सकै बिलगाय ?
दोनों की ही अन्नमय, देह न अंतर कोय,
परम ब्रह्म एकहि बसे, ब्रह्म कहाँ दुइ होय ?

सब घट बसहिं ब्रह्म एक एका । तुमहिं कदाचित दिखत अनेका ।।
तबहीं 'दूर हट' कहत हो संता । नाहीं कदाचित लखत अनंता ।।
माटी घट या कनक कटोरा । रवि प्रतिबिम्ब एक बहु ओरा ।।
जब लौं 'तू' 'मैं' भाव न जाई । ब्रह्म कबहूँ नहीं परत दिखाई ।।

जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते
या ब्रह्मादिपिपीलिकान्ततनुषु प्रीताजगत्साक्षिणी ।
सैवाऽहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति चे-
च्चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ।।१।।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था । किंचन से ले जगत व्यवस्था ।।
तत्व, सत्व, अस्तित्व प्रमाना । ब्रह्म तत्व सब जीव समाना ।।
जो कछु दिखत, न परत दिखाई । स्पंदित प्रभु की प्रभुताई ।।
जब सब मांही ब्रह्म समाना।कथ द्विज बढ़, हम लगत अयाना ।।१।।

If a person has attained the firm knowledge that he is not an object of perception, but is that pure consciousnes s which shines clearly in the states of waking, dream and deep sleep, and which, as the witness of the whole universe, dwells in all bodies from that of the Creator Brahma to that of the ant, then he is my Guru, irrespective of whether he is an out caste or a Brahmana. This is my conviction

ब्रह्मैवाऽहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाऽशेषं मया कल्पितम् ।
इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ।।२।।

ब्रह्म तत्व सब मांही समाना, 'को बढ़ कैसे, कौन अयाना ?
सबके अंतस ब्रह्म अनंता । एक नियामक, एक नियंता ।।
सत, रज, तम गुण कारण मूला । भ्रमित ज्ञान अज्ञान समूला ।।
भेद दृष्टि दुइ परत दिखाई । दोष दृष्टि की यह लघुलाई ।।२।।

"I am Brahman (pure consciousness). It is pure consciousness that appears as this universe. All this is only something conjured up by me because of avidya (nescience) which is composed of the three gunas (sattva, rajas and tamas)". One who has attained this definite realiza tion about Brahman which is bliss itself, eternal, supreme and pure, is my Guru, whether he is an outcaste or a Brahmana

शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरो-
र्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना ।
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम ॥३॥

गुरु वचना विश्वास अगाधा । क्षणिक जगत, माया बहु ब्याधा ।।
प्रभु सुमिरन, प्रभु में नित नेहा । जाके हेतु मनुज की देहा ।।
बिनु संशय, जिन निरत उपासे । तिन प्रारब्धा करम विनासे ।।
करम विपाक होत अस रूपा । ब्रह्म नित्य हिय रहत अरूपा ।। ३ ।।

Having come to the definite conclusion, under the instruction of his Guru, that the entire universe is always perishable, he who, with a calm and pure mind constantly meditates on Brahman, and who has burnt his past and future sins in the fire of knowledge, submits his present body to the operation of his prArabdha karma. This is my conviction.

या तिर्यङ् नरदेवताभिरहमित्यन्तःस्फुटा गृह्यते
यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः ।
तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन्
योगी निर्वृतमानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥४॥

वसत सच्चिदानंद नियंता । जिनके हिय परब्रह्म अनंता ।
जासु कृपा से जग संचालन । सकल सृष्टि संरक्षक, पालन ।।
बादल सों जस रवि ढक जाई । तस बिनु ज्ञान ना परत दिखाई ।।
वे योगी अतिशय महताई । ब्रह्म मर्म जिन होत जनाई ।।४।।

The Self or pure consciousness is experienced clearly within by animals, men, and gods as 'I'. It is by the reflection of this pure consciousness that the mind, senses and body, which are all insentient, appear to be sentient. External objects are perceived only because of this consciousness. This Self is, however, concealed by the very mind, senses and body which are illumined by it, just as the sun is concealed by clouds. The yogi who, with a calm mind, always meditates on this Self is my Guru. This is my conviction.

यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृता
यश्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः ।
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मविद्
यः कश्चित् स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम ॥५॥

आत्म बोध जेहि जन चित होई । स्वयं ही ब्रह्म सरूपा सोई ।
पूर्ण-काम परिपूरन जानो । ब्रह्म स्वयं तस जन, अस जानो ।।
देवहूँ जिनके चरण पखारें । ब्रह्म भाव से ताहि निहारें ।।
ब्रह्म तत्व, परिपूर्ण महाना । स्वयं ब्रह्मविद, ब्रह्म समाना ।।५।।

The Self, which is Brahman, is the eternal ocean of supreme bliss. A minute fraction of that bliss is enough to satisfy Indra and other gods. By meditating on the Self with a perfectly calm mind the sage experiences fulfillment. The person whose mind has become identified with this Self is not a mere knower of Brahman, but Brahman itself. Such a person, whoever he may be, is one whose feet are fit to be worshipped by Indra himself. This is my definite conviction

धन्याष्टकम्

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां
तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् ।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः
शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति ।।१।।

ज्ञान वही जिन देत जनाई । इन्द्रिन सकल चपलता जाई ।।
जाननि जोग उपनिषद सारा । सगरो ज्ञान अनंत पसारा ।।
धन्य धरनि पर वे जन महती । परमारथ हित जिन चित रहती ।।
अन्य निःशेष करत निज जनमा । मोह जगत मोहित मन भरमा ।।१।।

That is wisdom, which maintains senses at peace, That is knowledge, which is the understanding of Upanishads, He who does all the work towards understanding this truth is blessed, And all others are in the state of utter confusion in the maze called the world.

आदौ विजित्य विषयान्मदमोहराग-
द्वेषादिशत्रुगणमाहृतयोगराज्याः ।
ज्ञात्वामृतं समनुभूयपरात्मविद्या-
कान्तासुखा बत गृहे विचरन्ति धन्याः ।।२।।

राग द्वेष रिपु कर निर्मूला । विषय वासना हीन समूला ।।
ज्ञान ग्रहण उद्यम जिन प्रेया, योगारूढ़ अवस्था श्रेया ।।
आत्म ज्ञान संग सदा सुहाती । संग भार्या जस दिन राती ।।
धन्य-धन्य जिन वन गृह गेहा, विरत न नेकु निकेतन नेहा ।।२।।

He indeed is blessed, who wins over the enemies within Of the Passion, desire hatred and excess of emotions And gets in to the kingdom of yoga and reaches, The deathless state, and lives happily with, The wife called knowledge in the house of reasoning.

त्यक्त्वा गृहे रतिमतोगतिहेतुभूता-
मात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः ।
वीतस्पृहा विषयभोगपदे विरक्ता
धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः ।।३।।

नेह निकेतन को जिन त्यागी । आत्म ज्ञान अमृत अनुरागी ।।
उपनिषदीय सार आसक्ता, पद, विषयन सों रहत विरक्ता ।।
वीतराग, वैरागी चित्ता । जनम समर्पित ब्रह्म निमित्ता ।।
धन्य भाग उनके बहुताई । अस असंग, संग संगति पाई ।।३।।

He indeed is blessed who forsakes the desire created by passion, In the home which is the reason for his downfall, Who drinks the essence of Upanishads leading, To the desire to know about Athma, Who becomes detached, not getting interested, In the passion and the material wealth, And who wanders in solitude far away from society .

त्यक्त्वा ममाऽहमिति बन्धकरे पदे द्वे
मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च ।
कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि
कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः ।।४।।

मैं, मेरा, ममकार अहंता । जीवन बंधन जनम अनंता ।।
मान और अपमान समाना । सम दृष्टा सबको सम माना ।।
कर्ता, कर्म करत कोऊ अन्या । अस विचार जिनके मन धन्या ।।
धन्य-धन्य निष्कामी प्रानी । करम विपाक, करत वे ज्ञानी ।।४।।

He is indeed blessed who forsakes the two words, me and mine, Who views insult and praise as equal and the same, Who understands himself as different from the doer

within him, And who dedicates all his actions and their results to the doer.

त्यक्त्वैषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा
भैक्ष्यामृतेन परिकल्पितदेहयात्राः ।
ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं
धन्याद्विजा रहसि हृद्यवलोकयन्ति ।।५।।

पुत्र, वित्त लोकेष्णा त्यागी । वे ही मोक्ष मार्ग अनुरागी ।।
बस भिक्षान्न, अमिय जिन तृप्ता । देह निर्वहन हेतु न लिप्ता ।।
परे परात्पर ब्रह्म प्रकासा । अंतस धरे ब्रह्म की आसा ।।
धन्य-धान्य अस द्विज जन सोई । धन्य-धान्य शुभ जनम संजोई ।।५।।

That twice born is indeed blessed who forsakes, The three desires for wealth recognition and family, Who practices and walks in the path of salvation, Who manages his walk of life with the nectar of alms, And who researches in his heart about the eternal light, Of the eternal soul and understands it.

नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणुं
न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेकबीजम् ।

यैर्ब्रह्म तत्समनुपासितमेकचित्ता
धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः ।।६।।

ना अणु ना ही महत अनंता । ना सत,ना असत, विरल ही सत्ता ।
ना नारी ना पुरुष नपुसंक । एक मूल कारण जग सर्जक ।।
मन एकाग्र ब्रह्म जिन साधा । वे भव सिन्धु तरें बिनु बाधा ।।
धन्य-धन्य जिन ब्रह्म उपासा । अन्य अन्य बंधित भव पाशा ।।६।।

He is indeed blessed, who is not good nor bad, nor great, Not man nor woman and nor an eunuch, Who is the. only cause of the world, Who with concentration only searches for the eternal truth, And who becomes person of luster without getting entangled, In the desires for reaching the eternal

अज्ञातपङ्कपरिमग्नमपेतसारं
दुःखालय मरणजन्मजरावसक्तम् ।
संसारबन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या
ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति ।।७।।

तिन पर कृपा नियंता कीन्हा । जिन अज्ञान सहज तजि दीन्हा ।
जनम,मृत्यु, दुःख,जरा अवस्था, जिन जानाति अथ प्रकृति व्यवस्था ।
ज्ञान रूप अरि काटहिं बन्धा । जीवन दर्शन मुक्ति प्रबंधा ।।
धन्य-धन्य जिनके चित जागा । अस विराग वे ही बढ भागा ।।७।।

He is indeed blessed, who gets free of the mire of ignorance, Sorrow, death, birth and disability due to aging, Who understands that these ties of the world are transient, And cuts the bondage with the knife of wisdom, And who understands that this is the philosophy of life

शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावै-
रेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः ।
साकं वनेषु विजितात्मपदस्वरूपं
शास्त्रेषु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः ॥८॥

शांत,सुमति,शुभ,मधुर सुभावा । विरत, जिन्हें दृढ़ निश्चय भावा ॥
आत्म तत्त्व वेत्ता वनवासी । कण-कण ब्रह्म तत्त्व विश्वासी ॥
परम ब्रह्म परि पूरन सत्ता । आदि-अंत परब्रह्म इयत्ता ॥
धन्य-धन्य जीवन प्रभुताई । ब्रह्म तत्त्व जिन चित्त समाई ॥८॥

He is indeed blessed, who decides on the oneness, Who forsakes passion, who gets the company of peaceful, Incomparably intelligent people with sweet nature, Who live in the forest and who forever think and analyze, Scientifically about the significance of the soul.

साधनपञ्चकम्

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम् ।
पापौघः परिभूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयता-
मात्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ।।१।।

नियमित अध्ययन वेदों का, तंदनुसार हों कर्म,
विधि, विधान, विधना महत, पालन करता धर्म ।
व्यर्थ कर्म से चित विरत, सकल पाप हों शेष,
भव सुख दुःख का मूल, कर, गेह नेह निःशेष ।।१।।

Study the Vedas regularly. Abide by the actions mentioned there. Be disciplined as per Lord's rules. Keep your mind away from unnecessary actions. Burn all your sins. Scrutinize the pleasures of this world to know that they are surrounded by pain. Constantly try for Self-Knowledge. Give up the attachment for home promptly. ?1?

सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु सन्त्यज्यताम् ।
सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रतिदिनं तत्पादुका सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम् ।।२॥

बने शांति प्रिय, सत्यप्रिय, कबहूँ करम कटु नाहिं,
सुजन संग सत्संग कर, दृढ़ भक्ति प्रभु मांहि ।
एकाक्षर परब्रह्म का, ॐ का अर्थ उचार,
महावाक्य वेदांत के, सुनकर गुनें विचार ।।२।।

Be in the company of noble men. Make yourself further established in devotion to Lord. Practice virtues like peace etc., stop harder activities. Take refuge in the persons knowing the absolute truth, serve his feet. Contemplate on single syllable name (Om) of the Lord. Listen principal declarations of Upanishads. ?2?

वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसन्धीयताम् ।
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां
देहेऽहम्मतिरुज्झ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम् ।।३॥

तर्क कुतर्कों से परे, श्रुति विश्लेषण तथ्य,
कर विचार वेदांश पर इस विधि पावें सत्य ।
'ब्रह्म हूँ मैं', यह सोचकर, कबहूँ न कर अभिमान,
'देह हूँ मैं' तज भाव यह, बुधि जन कहना मान ।।३।।

Contemplate on the meaning of Mahavakyas of Upanishads, take the side of main sayings of Upanishads. Avoid perverse arguments and scrutinize the logic of the arguments abiding by Upanishads. Keep remembering 'I am Brahman' and leave aside the egoistic 'I'. Destroy the misconception - 'I am this body'. Do not argue with wise men. ?3?

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन सन्तुष्यताम् ।
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपा नैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम् ।।४।।

भूख रोग, भिक्षान्न अथ औषधि रूपी जान,
स्वाद हेतु नहिं अन्न अथ, मिले सो विधना मान ।
सम्यक शीत व उष्ण में, व्यर्थ न करें विवाद,
कृपा निठुरता से परे, उदासीन, प्रभु याद ।।४।।

Treating hunger as a disease, take the medicine in

the form of begged food daily. Do not strive for delicious food. Be content with whatever you get as per rule. Endure heat and cold, and the like. Avoid speaking unnecessarily. Wish for being indifferent. Maintain distance from the kindness and harshness of the common men. ?4?

एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम् ।
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ।।५॥

परमब्रह्म में चित्त रत, सुख एकांत निवास,
ब्रह्म व्याप्त ब्रह्माण्ड में, अटल धारि विश्वास ।
नाश करो प्रारब्ध का, आगत स्वागत कर्म,
भोग यहीं प्रारभ, रत, परम ब्रह्म यह धर्म ।।५।।

Enjoy in solitude, meditate on the Lord, search for the Lord, see this world as pervaded by Him. Destroy the effects of the previous deeds, welcome the future with all your mental strength. Exhaust the remaining effects of past actions here and get established in the Lord ?5?



मायापञ्चकम्

निरुपमनित्यनिरंशकेऽप्यखण्डे मयि चिति सर्वविकल्पनादिशून्ये ।
घटयति जगदीशजीवभेदं त्वघटितघटनापटीयसी माया ।।१।।

माया अति दुरूह मायावी, प्रबल प्रभुत्वं पूर्ण छलावी ।
'मैं' अद्वय नित पूर्ण इयत्ता, माया चाहत अपनी सत्ता ।।१।।

O Maya, Who is without comparison, ternal, not a part of (anything), Who is indivisible, Who is the stack (of the universe), Who is free from all imaginations! You bring together the life-mysteries of Lord. You, Maya, are indeed more clever than the unhappened.

श्रुतिशतनिगमान्तशोधकान-प्यहह धनादिनिदर्शनेन सद्यः ।
कलुषयति चतुष्पदाद्यभिन्ना-नघटितघटनापटीयसी माया ।।२।।

करत असंभव, संभव माया, दुष्कर दुस्तर पार न पाया ।
अति वेदज्ञ विमोहित माया, व्यवहत चतुष्पदा सम, दाया ।।२।।

Oh! Indeed the Veda, the hundreds of treatises, their corrections, and the four-limbed ones get polluted by the means of wealth, luxuries etc., (by You). You, Maya, are indeed more clever than the unhappened.

सुखचिदखण्डविबोधमद्वितीयं वियदनलादिविनिर्मिते नियोज्य ।
भ्रमयति भवसागरे नितान्तं त्वघटितघटनापटीयसी माया ।।३।।

'मैं' अद्वय नित पूर्ण विदेहा, मायावश समझत मैं देहा ।
पंचतत्वमय देह लुभाया, पुनि-पुनि जनम मरण भरमाया ।।३।।

Having tied the induplicable, bliss-form, and indivisible consciousness, You create the sky, universe, fire, and other elements; then You roam in the whole universe till the deluge or dooms day. You, Maya, are indeed more clever than the unhappened.

अपगतगुणवर्णजातिभेदे सुखचिति विप्रविडाद्यहंकृतिं च ।
स्फुटयति सुतदारगेहमोहं त्वघटितघटनापटीयसी माया ।।४।।

माया छलमय प्रबल विकारी, वर्ण व जाति विभागनकारी ।
'अहम्' नारी,गृह,सुत संग रागा, माया की माया सों जागा ।।४।।

O the one Who is departed away from qualities, color, race, and differences with respect to them! O the

one Who is the heap of happiness! You shine in the pride of learned and the kings, and in the attachment towards son, wife, and home. You, Maya, are indeed more clever than the unhappened.

विधिहरिहरविभेदमप्यखण्डे वत विरचय्य बुधानपि प्रकामम् ।
भ्रमयति हरिहरभेदभावा-नघटितघटनापटीयसी माया ।।५।।

माया महत महीयसि महिमा, करत विभेद विधि, हरी ब्रह्मा ।
माया,भ्रमित करत मति बौनी, होनी करत जदपि अनहोनी ।।५।।

O the one Who is indivisible! Having ashtonishingly created differences between Brahma (Vidhi), Vishnu (Hari), and Shiv (Har) in the mind of even the learned desirous men, You roam around as the difference between Vishnu (Hari) and Shiv (Har) [1]. You, Maya, are indeed more clever than the unhappened.



आत्मपञ्चकम्

नाऽहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गं नाऽहङ्कारः प्राणवर्गो न बुद्धिः।
दारापत्यक्षेत्रवित्तादिदूरः साक्षी   नित्यःप्रत्यगात्मा शिवोऽहम्।।१।।

ना मैं देह,इन्द्रियन सत्ता, बुद्धि अहम् ना आत्म इयत्ता ।
घर,पत्नी, सुत संग न नेहा, मैं शिव शाश्वत पूर्ण विमोहा ।।१।।

I am neither the body, nor the senses nor the mind, Neither am I pride, soul nor intellect, But I am Shiva, who is eternal, Who is completely unattached. Who is far, far and far away From wife, son, lands and assets, And is the witness for everything.

रज्ज्वज्ञानाद् भाति रज्जुर्यथाऽहिः स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः ।
आप्तोक्त्याहिं भ्रान्तिना सैव रज्जुर्जीवो नाऽहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम्।।२।।

रसरी सर्प लगत अज्ञाना, भ्रमवश जीव न होत सुजाना ।
तस मैं आत्मा नहिं, शिवरूपा सदगुरु ज्ञान दिखत सतरूपा ।।२।।

Due to ignorance I think that a rope is a snake, For due to absence of Jnana. I ascribe life in to lifeless thing. And when the realized one points it out, I wake up from this illusion, And understand that it is a rope and not a snake. Similarly I am not the soul but Shiva, Which I only understand by the teaching of the great teacher.

आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्यज्ञानानन्दरूपं विमोहात् ।
निद्रामोहात् स्वप्नवत्तन्न सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम ।।३।।

भ्रमवश जगत दिखत सुखदायी, सत्य, विमोहक चिर स्थायी ।
स्वप्न,नींद,जस सत्य प्रतीती, तस मैं शिव सत पूर्ण विभूती ।।३।।

Due to the veil of ignorance, I see this world in the eternal life, Which has the form of truth and joy, Similar to the dream which I see due to veil of sleep, For I am the pure complete, perennial and single Shiva.

मत्तो नाऽन्यत् किञ्चिदत्रास्ति विश्वं सत्यं बाह्यं वस्तुमायोपक्लृप्तम् ।
आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं मय्यद्वैते भाति तस्माच्छिवोहम् ।।४।।

मोंसों पृथक जगत कछु नाहीं, दर्पण दिखत मोर परछाहीं ।
मैं ही स्वयं अखिल जगरूपा, मैं अद्वय'शिव' सत्य स्वरूपा ।।४।।

This world is in no way different from me, Similar to everything getting reflected in a mirror, All the world is within me, So I am that Shiva which is without two.

नाऽहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः ।

कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाह-ङ्कारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम ।।५।।

जनम,वृद्धि,मृत्यु बहुबारा, देह विकारा, विविध प्रकारा ।
आत्मरूप मैं नाहीं देहा, मैं "शिव" शाश्वत विरत विदेहा ।।५।।

Nor was I born nor grew nor die, For birth, growth and death are for the body, The nature of taking up a work is, The reflections of pride and not, For my soul which is eternal,.And so I am the unattached Shiva.

नाऽहं जातो जन्ममृत्यू कुतो मे
नाऽहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाऽहं चित्तं शोकमोहौ कुतो मे
नाऽहं कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो मे ।।६।।

जनम-मरण आकार विहीना, मैं बिनु देह जनम कब लीना ।
सुख-दुःख, कर्ता भाव, विहीना, राग विराग कर्मकृत हीना ।।६।।

I was not born, whence birth and death came to me, I am not the soul, whence came hunger and thirst to me, I am not the mind, whence came passion and sorrow to me, I am not the doer, whence came attachment and detachment to me?

लघुवाक्यवृत्तिः

स्थूलो मांसमयो देहो सूक्ष्मः स्याद्वासनामयः ।
ज्ञानकर्मेन्द्रियैः सार्धं धीप्राणौ तच्छरीरगौ ।।१।।

मांसमयो देहो स्थूला, संस्कार में सूक्ष्म समूला,
ज्ञान कर्म इन्द्रिय धी प्राणा, योग सों सूक्ष्म देह निर्माणा ।

Sthoola shareera is the body made of flesh. Sookshma shareera is made of impression together with sense organs, motor organs, intellect and life- force present in the subtle body.

अज्ञानं कारणं साक्षी बोधस्तेषां विभासकः ।
बोधाभासो बुद्धिगतः कर्ता स्यात्पुण्यपापयोः ।।२।।

कारण तन, कारण अज्ञाना, साक्षी चेतन तत्व सुजाना,
बोधाभास बुद्धिगत होई, पाप या पुण्य, जीव करे जोई ।

Karan shareer is ignorance. witness is the consciousness that illumines them. The reflection of consciousness in the mind is the doer of good and bad acts.

स एव संसरेत्कर्म वशाल्लोकद्वये सदा ।
बोधाभासाच्छुद्धबोधं विविच्यादतियत्नतः ।।३।।

भटकत सतत हैं जीव सकामी, यह अपि जनम बहुल आगामी,
शुद्ध बोध और शुद्ध अभासा, अतिशय यत्न होत उद्धासा ।

He (doer)travels ceaselessly; in this life and the next, due to karma. Pure consciousness should be distinguished from reflected consciousness with great efforts.

जागरस्वप्नयोरेवं बोधाभासविडम्बना ।
सुप्तौ तु तल्लये बोधःशुद्धो जाड्यं प्रकाशयेत् ।।४।।

केवल जाग्रति नींद अवस्था, ही प्रतिबिंबित होत चित यथा
पर सुषुप्ति जब चित्त विलीना, ज्योतित चित अज्ञान मलीना।

In the waking and dream states alone, the reflection of consciousness reflects. But in deep sleep when it resolves, pure consciousness illumines ignorance.

जागरेऽपि धियस्तूष्णीं भावः शुद्धेन भास्यते ।
धीव्यापाराश्च चिद्भास्याश्चिदाभासेन संयुताः ।।५।।

जाग्रत काल शांत धी जब भी शुद्ध भाव उद्भासित तब भी,
धी व्यापारा, अंतस दोई, चिदाभास संयुक्ता होई ।

In the waking state, even silence in the mind is illumined by the pure consciousness. Activities of the mind are also illumined by consciousness together with the reflection of consciousness.

वह्नितप्तजलं तापयुक्तं देहस्य तापकम् ।
चिद्भास्या धीस्तदाभासयुक्तान्यं भासयेत्तथा ।।६।।

जस जल तप्त ताप सों होई, तपित देह जल करत है सोई,
तस ही आत्मा सों 'धी' ज्योतित, वही ज्योति सबमें आलोकित ।

Just as water, heated by fire, acquires heat that can burn one's body,so too, the intellect illumined by consciousness its reflection and illumines other things.

रूपादौ गुणदोषादिविकल्पा बुद्धिगाः क्रियाः ।
ताः क्रिया विषयैः सार्धं भासयन्ती चितिर्मता ।।७।।

रूप आदि गुण दोष विकारा,बुद्धि विकल्पित सकल अकारा,
शुद्ध तत्व नित एक प्रकारा, जासों ज्योतित सकल पसारा ।

Notions like the qualities and defects of forms, etc are activities of the mind. those activities, together with their objects, are understood as being illumined by consciousness.

रूपाच्च गुणदोषाभ्यां विविक्ता केवला चितिः ।
सैवानुवर्तते रूपरसादीनां विकल्पने ।।८।।

रूपादि गुण-दोष आकारा, रस आदि को ज्ञान अपारा,
केवल चित्ति-शक्ति सों संभव, मूल ज्ञान चेतन सों उद्भव ।

Distinct from the qualities and defects of the forms is pure consciousness. that (consciousness) confirms to the cognition of form, taste etc.

क्षणे क्षणेऽन्यथाभूता धीविकल्पाश्रितिर्न तु ।
मुक्तासु सूत्रवद् बुद्धिविकल्पेषुचितिस्तथा ।।९।।

क्षण-क्षण बदलत बुद्धि चित मना, किन्तु चित्त कबहूँ एक क्षण ना
मुक्ता में जस सूत्र तस यथा, सदा यथावत चित्त अवस्था ।

Moment by moment cognition of the mind change but not consciousness. Like the thread in the string of pearls, consciousness is present in all cognition.

मुक्ताभिरावृतं सूत्रं मुक्तयोर्मध्य ईक्ष्यते ।
तथा वृत्तिविकल्पैश्चित्स्पष्टा मध्ये विकल्पयोः ।।१०।।

छूपा सूत्र मोतिन के नीचे, दिखत तबहिं जब मोती खींचे,
वृत्ति विकल्प भी ऐसी जानो, मध्य विकल्प इसे पहचानो ।

Thread, hidden within pearls, can be seen within two pearls. so too (consciousness,hidden) by mental activities can be seen between two cognition.

नष्टे पूर्वविकल्पे तु यावदन्यस्य नोदयः ।
निर्विकल्पकचैतन्यं स्पष्टं तावद्विभासते ।।११।।

जब प्रारब्ध होत सब शेषा, नूतन अन्य न होत प्रवेशा,
निर्विकल्प तब हो चैतन्यं, उद्भासित ज्योतित चिर सत्यम ।

When the prior cognition has subsided and new another has not yet arisen, cognition free consciousness shines clearly.

एकद्वित्रिक्षणेष्वेवं विकल्पस्य निरोधनम् ।
क्रमेणाभ्यस्यतां यत्नाद्ब्रह्मानुभवकाङ्क्षिभिः ।।१२।।

क्रमशः क्षण-क्षण ध्यान बढ़ावे, बाधा और विकल्प हटावे,
नित अभ्यासा सतत् प्रयासा, ब्रह्म ज्ञान जिन हिया पिपासा ।

Gradually increasing from one, two then three months, the restraint of all cognitions should be practiced with effort by those who seek the experience of the Brahman.

सविकल्पकजीवोऽयं ब्रह्म तन्निर्विकल्पकम् ।
अहं ब्रह्मेति वाक्येन सोऽयमर्थोऽभिधीयते ।।१३।।

अथ सविकल्प जीव है ऐसा, निर्विकल्प परब्रह्म हो जैसा,
'अहम् ब्रह्म' वाक्य अति गूढ़ा, गूढ़ गर्भिता अर्थ प्रगूढ़ा ।

The person with cognition (is recognized to be) cognition free Brahman through the teaching 'I am Brahman." That is main idea being taught.

सविकल्पकचिद्योऽहं ब्रह्मैकं निर्विकल्पकम् ।
स्वतःसिद्धा विकल्पास्ते निरोद्धव्याः प्रयत्नतः ।।१४।।

सविकल्पित चित बंध अनेका, निर्विकल्प चित ब्रह्म में एका
स्वतः सिद्ध बहु बंध बनावे, निज प्रयत्न सो स्वतः हटावे ।

The one who is consciousness with cognition is me--non-separate from brahman and cognition-free. these self-evident cognition are to be restrained with efforts.

शक्यः सर्वनिरोधेन समाधिर्योगिनां प्रियः ।
तदशक्तौ क्षणं रुद्ध्वा श्रद्धालुर्ब्रह्मतात्मनः ।।१५।।

जब संकल्प-विकल्प निरोधा, तब प्रिय होत समाधि प्रबोधा,
क्षण भर अपि यह भाव भुलाई,'अहम् ब्रह्म' को भाव डिगाई।

BE complete restraint (of all cognition) samadhi desired by yogis is possible. If that is not possible, then (practice) momentary restraint with the belief that atma is brahman.

श्रद्धालुर्ब्रह्मतां स्वस्य चिन्तयेद्बुद्धिवृत्तिभिः ।
वाक्यवृत्त्या यथाशक्ति ज्ञात्वाद्धाभ्यस्यतां सदा ।।१६।।

एकमेव बस ब्रह्म को बोधा, ज्ञान परस्पर तत्व प्रबोधा,
यथाशक्ति समझे यह ज्ञाना, व्यवहृत सत्यम भाव सुजाना ।

The faithful should meditate on one's nature as brahman using the activities of his mind. Having understood these teachings as much as possible, contemplate that truth always.

तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ।।१७।।

चिंतन कथन ब्रह्म को बोधा, ज्ञान परस्पर तत्व प्रबोधा,
एकमेव बस ब्रह्म को ध्याना, बोधिसत्व परब्रह्म प्रमाना ।

Meditating on that, talking about that, teaching each other about that, being focused on that the wise ones call this contemplation on brahman.

देहात्मधीवद्ब्रह्मात्मधीदार्ढ्ये कृतकृत्यता ।
यदा तदायं म्रियतां मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ।।१८।।

'मैं हूँ ब्रह्म यही दृढ़ जाना, देह न मैं यह ज्ञान सुजाना,
अस ज्ञाता जब करत प्रयाणा, बिनु संदेह होत निर्वाणा ।'

When ones knowledge of atma being brahman is

as firm as the notion that atma is body, then one is complete. When that person dies, he is liberated without doubt.

स्वरूपानुसन्धानाष्टकम्

तपोयज्ञदानादिभिः शुद्धबुद्धि
विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छबुद्ध्या ।
परित्यज्य सर्वं ययाऽऽप्नोति तत्त्वं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ।।१।।

मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा
जिन चित मन बुद्धि तप शुद्धा, वीतराग परिपूर्ण प्रबुद्धा,
विरत राज पद,चाह न भूपा, तिन जानत निज सत्य स्वरूपा।
मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा ।

I am that eternal supreme Brahman which is attained by one whose mind has become pure by the practice of austerities, performance of sacrifices, giving of gifts, and the like, and who has total detachment and rejects everything including even the status of a king as worthless tings.

दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं
समाराध्य मर्त्या विचार्य स्वरूपम् ।
यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान्
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ।।२।।

ब्रह्मलीन गुरु शांत प्रवीरा, जाएँ अस गुरुवर के तीरा ।
दत्त-चित्त रत,निज सत रूपा, ध्यान से सिद्धजो सत्य स्वरूपा ।
मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा ।

Having approached and propitiated a Guru who is compassionate, calm and established in Brahman, one should mentally contemplate one's own real nature. I am that eternal supreme Brahman which such a man of wisdom attains by meditation on the Reality.

यदानन्दरूपं प्रकाशस्वरूपं
निरस्तप्रपञ्चं परिच्छेदशून्यम् ।
अहं ब्रह्मवृत्त्यैकगम्यं तुरीयं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ।।३।।

सीमा बंधन मुक्त कृपालु, ज्योतिर्भू उन्मुक्त दयालु ।
'अहम् ब्रह्म'चित वृति तद रूपा, यह तुरीय अथ सत्य स्वरूपा,
मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा ।

I am that eternal supreme Brahman which is of the nature of bliss, self luminous, unconditioned by the world, attainable only through the mental modification in the form 'I am Brahman which is the Fourth (being beyond the three sates of waking, dream and deep sleep)

यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं
विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधे ।
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ।।४।।

मैं परब्रह्म शाश्वत सत्ता, बुद्धि वचन से परे इयत्ता ।
जग बिन ज्ञान, लगत सतरूपा, ब्रह्मज्ञान से असत स्वरूपा,
मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा ।

I am that eternal supreme Brahman which is beyond the reach of the mind and speech, pure and ever liberated. the universe appears (as real) because of ignorance of Brahman and disappears as soon as the Self is realized .

निषेधे कृते नेति नेतीति वाक्यैः
समाधिस्थितानां यदा भाति पूर्णम् ।
अवस्थात्रयातीतमेकं तुरीयं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ।।५।।

नेति-नेति ब्रह्माण्ड उचारा, समाधिस्थ आतम उजियारा,
जाग्रत, नींद, सुषुप्ति, प्रारूपा, से परे अद्वय सत्य स्वरूपा ।
मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा ।

When the whole universe is negated as 'not this' 'not this' that infinite Self which shines in the state of samadhi, which is beyond the three states waking, dream and deep sleep, which is only one and non- dual that eternal supreme Brahman I am.

यदानन्दलेशैः समानन्ति विश्वं
यदा भाति सत्त्वे तदा भाति सर्वम् ।
यदालोचने रूपमन्यत् समस्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ।।६।।

जाकी किंचित कृपा विशाला, सकल विश्व मन मुदित उजाला।
ज्योति पुञ्ज ज्योतिर्भू रूपा, ज्योतित जग जो ज्योतिस्वरूपा।
मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा ।

By the particle of the bliss of which the entire universe enjoys happiness, because of which shining, everything shines, by the light of which everything else is illumined, that eternal supreme Brahman I am

अनन्तं विभुं सर्वयोनिर्निरीहं
शिवं सङ्गहीनं यदोङ्कारगम्यम् ।
निराकारमृत्यूज्ज्वलं मृत्युहीनं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ।।७।।

निर्गुण व्यापक ब्रह्म असीमा, वीतराग शुभ महती महिमा,
सुलभ ॐ! से प्रणव अरूपा, अजर अमर सत सत्य स्वरूपा,
मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा ।

I am that eternal supreme Brahman, which is infinite, all-pervading, devoid of different forms, action less, auspicious, free from attachment, attainable through the pranav OM, formless, extremely resplendent and deathless.

यदानन्दसिन्धौ निमग्नः पुमान् स्या-
दविद्याविलासः समस्तप्रपञ्चः ।
यदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ।।८।।

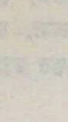
दिखत न ब्रह्म, कारण अज्ञाना, कृपा होत तब जीव सुजाना,
असत हटत, देखत सत रूपा, ब्रह्म अकेला सत्य स्वरूपा,
मैं वह शाश्वत ब्रह्मस्वरूपा ।

When a person is immersed in this ocean of bliss, the universe which is the play of nescience and the cause of which is that wonderful Brahman does not appear any-more. That eternal supreme Brahman I am.

स्वरूपानुसन्धानरूपां स्मृतिं यः
पठेदादराद्भक्तिभावो मनुष्यः ।
शृणोतीह वा नित्यमुद्युक्तचित्तो
भवेद् विष्णुरत्रैव वेदप्रमाणात् ।।९।।

यह स्वरूप अनुसंधानं जोई, भक्ति, चित्त मन भावित कोई,
ब्रह्म स्वरूप स्वयं वह होई, वेद कथित सत वचन संजोई ।
१०

The person who reads this hymn of praise named Swarupanusandhanam with sincerity and devotion or listen to it with an alert mind becomes Vishnu (Brahman) here itself. The Vedas are the authority for this.



ब्रह्मज्ञानावलीमाला

सकृच्छ्रवणमात्रेण ब्रह्मज्ञानं यतो भवेत् ।
ब्रह्मज्ञानावलीमाला सर्वेषां मोक्षसिद्धये ।।१।।

जस यह नाम से ही ध्वनित, ब्रह्म ज्ञान संज्ञान,
सत साधक को मोक्ष हित, योग्य करत यह ज्ञान ।

The work entitled Brahma Jnanavali Mala, by hearing which just once knowledge of Brahman is attained, enables all to attain liberation.

असङ्गोऽहमसङ्गोऽहमसङ्गोऽहं पुनः पुनः ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।२।।

मैं असंग हूँ मैं असंग हूँ, पुनि-पुनि मैं हूँ असंग,
सत चित आनंद रूपमय, अव्यय रूप अभंग ।

Unattached am I, unattached am I, ever free from attachment of any kind; I am of the nature of Existence-Consciousness-Bliss. I am the very Self, indestructible and ever unchanging.

नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निराकारोऽहमव्ययः ।
भूमानन्दस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥३॥

शुद्ध सनातन मुक्त मैं, अक्षय अटल अरूप,
भूमानंद स्वरूप मैं, अचल सदा एक रूप ।

I am eternal, I am pure (free from the control of mAyA). I am ever liberated. I am formless, indestructible and changeless. I am of the nature of infinite bliss. I am the very Self, indestructible and changeless.

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमच्युतः ।
परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥४॥

अच्युत अमर सनातन मैं, निराकार एक सत्य,
विरल परम आनंदमय, अव्यय ब्रह्म हूँ नित्य ।

I am eternal, I am free from blemish, I am formless, I am indestructible and changeless. I am of the nature of supreme bliss. I am the very Self, indestructible and changeless.

शुद्धचैतन्यरूपोऽहमात्मारामोऽहमेव च ।
अखण्डानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥५॥

शुद्ध रूप चैतन्य सत, आत्मस्वरूप आनन्द,
मैं अखंड आनंदमय, अव्यय परमानन्द ।

I am pure consciousness, I revel in my own Self. I am of the nature of indivisible (concentrated) bliss. I am the very Self, indestructible and changeless.

प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहं शान्तोऽहं प्रकृतेः परः ।
शाश्वतानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥६॥

अंतर नीहित चेतना, परे प्रकृति से शांत,
मैं शाश्वत आनंदमय, अक्षर अडिग नितांत ।

I am the indwelling consciousness, I am calm (free from all agitation), I am beyond prakrti (maya), I am of the

nature of eternal bliss, I am the very Self, indestructible and changeless.

तत्वातीतः परात्माहं मध्यातीतः परः शिवः ।
मायातीतः परंज्योतिरहमेवाहमव्ययः ॥७॥

तत्वातीत परात्म हूँ, परे शिव मध्यातीत,
परम ज्योति अक्षय अडिग, मैं हूँ मायातीत।

I am the supreme Self, beyond all the categories (such as prakRti, mahat, ahankAra, etc.), I am the supreme auspicious One, beyond all those in the middle. I am beyond mAyA. I am the supreme light. I am the very Self, indestructible and changeless.

नानारूपव्यतीतोऽहं चिदाकारोऽहमच्युतः ।
सुखरूपस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥८॥

अच्युत अक्षय आत्मवत, मैं परिवर्तन हीन,
अक्षर आत्मस्वरूप हूँ, नानारूप विहीन ।

I am beyond all the different forms. I am of the nature of pure consciousness. I am never subject to de-

cline. I am of the nature of bliss. I am the very Self, indestructible and changeless.

मायातत्कार्यदेहादि मम नास्त्येव सर्वदा ।
स्वप्रकाशैकरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।९।।

देह तदपि माया विरत, माया का न प्रभाव,
स्वयं दीप्त चैतन्य हूँ, अक्षय अव्यय भाव ।

There is neither mAyA nor its effects such as the body for me. I am of the same nature and self-luminous. I am the very Self, indestructible and changeless.

गुणत्रयव्यतीतोऽहं ब्रह्मादीनां च साक्ष्यहम् ।
अनन्तानन्तरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।१०।।

साक्ष्य भाव अपि ब्रह्म का, फिर भी त्रिगुणातीत,
मैं अनंत आनंदमय, अव्यय रूपातीत ।

I am beyond the three gunas-sattva, rajas, and tamas. I am the witness of even Brahma and others. I am of the nature of infinite bliss. I am the very Self, indestructible and changeless.

अन्तर्यामिस्वरूपोऽहं कूटस्थः सर्वगोऽस्म्यहम् ।
परमात्मस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।११।।

अन्तर्यामी स्वरूप मैं, व्यापक और कूटस्थ,
स्वत्व स्वयंभू, आत्मभू, ब्रह्मरूप ब्रह्मस्थ ।

I am the inner controller, I am immutable, I am all-pervading. I am myself the supreme Self. I am the very Self, indestructible and changeless.

निष्कलोऽहं निष्क्रियोऽहं सर्वात्माद्यः सनातनः ।
अपरोक्षस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।१२।।

मैं अभंग, सर्वात्मभू, आदि सनातन रूप,
निष्क्रिय अव्यय स्वयंभू, मैं अपरोक्षस्वरूप ।

I am devoid of parts. I am actionless. I am the self of all. I am the primordial one. I am the ancient, eternal one. I am the directly intuited self. I am the very Self, indestructible and changeless.

द्वन्द्वादिसाक्षिरूपोऽहमचलोऽहं सनातनः ।
सर्वसाक्षिस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।१३।।

साक्षी हूँ द्वंदादि में, अचल सनातन रूप,
सर्वसाक्षीमय रूप मैं, अटल व नित्य सरूप।

I am the witness of all pairs of opposites. I am immovable. I am eternal. I am the witness of everything. I am the very Self, indestructible and changeless.

प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एव च ।
अकर्ताहमभोक्ताहमहमेवाहमव्ययः ॥१४॥

प्रज्ञा और विज्ञान घन, एकमेव चैतन्य,
ना कर्ता, ना भोक्ता, अक्षय अटल अनन्य।

I am a mass of awareness and of consciousness. I am not a doer nor an experiencer. I am the very Self, indestructible and changeless.

निराधारस्वरूपोऽहं सर्वाधारोऽहमेव च ।
आप्तकामस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥१५॥

निराधार हूँ, तदपि मैं, सकल जगत आधार,
आप्तकाम अव्यय अटल, आगम-निगम अपार।

I am without any support, and I am the support of all. I have no desires to be fulfilled. I am the very Self, indestructible and changeless.

तापत्रयविनिर्मुक्तो देहत्रयविलक्षणः ।
अवस्थात्रयसाक्ष्यस्मि चाहमेवाहमव्ययः ।।१६।।

कारण सूक्ष्म व देह जड़, त्रिविध ताप से दूर,
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति का, मैं साक्षी भूरपूर ।

I am free from the three kinds of afflictions- those in the body, those from other beings and those caused by higher powers. I am different from the gross, subtle and causal bodies. I am the witness of the three states of waking, dream and deep sleep. I am the very Self, indestructible and changeless.

दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ ।
दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदान्तडिण्डिमः ।।१७।।

दृग और दृश्य पदार्थ दो, पृथक-पृथक हैं सत्व,
दृष्टा पूरण ब्रह्म तो, दृश्य है माया तत्व ।

There are two things which are different from each other. They are the seer and the seen. The seer is Brahman and the seen is mAyA. This is what all Vedanta proclaims.

अहं साक्षीति यो विद्याद्विविच्यैवं पुनः पुनः ।
स एव मुक्तः सो विद्वानिति वेदान्तडिण्डिमः ।।१८।।

पुनि-पुनि विद्या ज्ञान से, निःसृत ये तथ्य नितांत,
मैं तो साक्षी मात्र हूँ, मुक्त तथ्य वेदांत ।

He who realizes after repeated contemplation that he is a mere witness, he alone is liberated. He is the enlightened one. This is proclaimed by Vedanta.

घटकुड्यादिकं सर्वें मृत्तिकामांत्रमेव च ।
तद्वद्ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदान्तडिण्डिमः ।।१९।।

ये घट ये दीवार सब, जस माटी के रूप,
तस ही यह विश्वानि जग, ब्रह्म को प्रगट स्वरूप ।

The pot, wall, etc., are all nothing but clay. Likewise, the entire universe is nothing but Brahman. This is proclaimed by Vedanta.

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥२०॥

ब्रह्म सत्य जग झूठ है, जीव स्वयं ही ब्रह्म,
भेद नहीं वेदांत में, पुष्टि जीव परब्रह्म ।

Brahman is real, the universe is mithya (it cannot be categorized as either real or unreal). The jiva is Brahman itself and not different. This should be understood as the correct SAstra. This is proclaimed by Vedanta.

अन्तर्ज्योतिर्बहिर्ज्योतिः प्रत्यग्ज्योतिः परात्परः ।
ज्योतिर्ज्योतिः स्वयंज्योतिरात्मज्योतिः शिवोऽस्म्यहम् ॥२१॥

ज्योतिर्मय अन्तर्बहिर, ज्योतिर्भू शुभ ज्योति,
ज्योति की भी ज्योति मैं, आत्म ज्योतिर्मय ज्योति।

I am the auspicious one, the inner light and the outer light, the indwelling light, higher than the highest, the light of all lights, self-luminous, the light that is the Self.



कनकधारास्तोत्र

अष्टसिद्धि प्रदाता ।

अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व,वासित्व अष्ट लक्ष्मी।

आरोग्य,कीर्ति,संतान,विजय,धन-धान्य,मोक्ष,सौभाग्य,शांति।

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम् ।
अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः ।।१।।

जय जयति जय हरि ! अंग तो, आनंद भूषण शोभिता,
यहि रूप लखि हरि का मनोहर, लक्ष्मी श्री ! अस मोहिता,
जस भृंग मोहित मुकुल पुंज, तमाल के जो अधखिले,
तस ही कृपा मम मंगलम, विष्णु प्रिया से नित मिले ।

To the Hari who ewars supreme happiness as Or-

nament, The Goddess Lakshmi is attracted, Like the black bees getting attracted, To the unopened buds of black Tamala tree, Let her who is the Goddess of all good things, Grant me a glance that will bring prosperity.

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः
प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि ।
मालादृशोर्मधुकरीव महोत्पले या
सा मे श्रियं दिशतु सागरसंभवायाः ।।२।।

पुनि-पुनि निहारे मुग्ध, चितवन मुख मुरारे ! नीरजा,
निरखतीं संकोच से, सिद्धि, पयोदधि जन्मजा,
मधु मृच्छिका जस नील नीरज, के मधुर रस को गहे,
तस वही हरिवल्लभी शुभ, दृष्टि धन वर्षित महे ।

Again and again return, those glances, Filled with hesitation and love, of her who is born to the ocean of milk, To the face of Murari, Like the honey bees to the pretty blue lotus, And let those glances shower me with wealth.

विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्ष-
मानन्दहेतुरधिकं मुरविद्विषोऽपि ।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्द्ध
मिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ।।३।।

जय जयति जय माँ भगवती, की निमिष करुणा दृष्टि से,
इन्द्र भी देवेश मधुजित, हों दया की वृष्टि से
आनंद मय आनंद रूपा, सिद्धि वाची यशस्विनी
नील वारिज नयन से, मुझे देख माँ ! पद्मासिनी ।

Capable of making one as king of Devas in this world, Her side long glance of a moment, Made Indra, regain his kingdom, And is making Him who killed Madhu, supremely happy, And let her with her blu lotus eyes glance me a little.

आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द-
मानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम् ।
आकेकरस्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं
भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ।।४।।

अर्द्ध निमलित नयन से, अनिमेष तकतीं मुकुंद को,
सकुचात मन मुदिता रमा, श्री परम आनंदकंद को ।
नंद आनन, बंद नयना, भुजग शयनम नाथ श्री,
हे पद्मिनी ! देना मुझे धन अनवरत ऐश्वर्य श्री ।

With half closed eyes stares she on Mukunda, Filled with happiness, shyness and the science of love, On the ecstasy filled face with closed eyes of her Lord, And let

her, who is the wife of Him who sleeps on the snake, Shower me with wealth.

बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभेया
हारावलीव हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ।।५।।

कौस्तुभं आभूषणं, मणिहार नीलम शोभितं,
त्रैलोक्य स्वामी, मधु विजित, हे रमापति ! प्रिय वरं
प्रेम पूरितं, भाव भावित, श्री हरि ! को भगवती,
कमलालया, देना यथा, धन-धान्य मुझको सम्पत्ती ।

He who has won over Madhu(4), Wears the Kousthuba, as omament, And also the garland of glances, of blue Indraneela, Filled with love to protect ans grant wishes to Him, Of her who lives on the lotus, And let those also fall on me, And grant me all that is good.

कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारे-
र्धाराधरे स्फुरति यत्तटिदङ्गनेव ।
मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्ति-
र्भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः ।।६।।

शुभ श्याम वक्षस्थल विशाला, पद्मिनी जस दामिनी,
घन तिमिर में तड़ित मानहुँ, शोभिता पद्मासिनी,
हे ! जगतमातु ! महीयसी, हे ! वर महिम भार्गव सुता,
हे ! शुभप्रदा, देना मुझे धन अनवरत श्री अच्युता ।

Like the streak of lightning in black dark cloud, She is shining on the dark, broad chest, Of He who killed Kaidaba, And let the eyes of the great mother of all universe, Who is the daughter of Sage Bharghva, Fallon me lightly and bring me prosperity.

प्राप्तं पदं प्रथमतः खलु यत् प्रभावा-
न्माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन ।
मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्धं
मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः ।।७।।

जय जयति जय माँ भगवती की, निमिष करुणा दृष्टि से,
इन्द्र भी देवेश 'मधुजित' हों दया की वृष्टि से,
आनन्दमय आनन्दरूपा सिद्धि वाची यशस्विनी
नील वारिज नयनों से, मुझे देख माँ पद्मासिनी ।।

The God of Love could only reach, The killer of Madhu, Through the power of her kind glances, Loaded

with love and blessing And let that side glance, Which is auspicious and indolent, Fall on me.

दद्याद्दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा-
मस्मिन्न किञ्चन विहङ्गशिशौ विषण्णे।
दुष्कर्मघर्मपमनीय चिराय दूरं
नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः ।।८।।

द्रविण अम्बु धार की, मुझ दीन हित वर्षा करो,
विहग शिशु चातक अकिंचन, तृषित माँ तृष्णा हरो,
पवन सी विस्तृत दयालु, अघ हरो नारायणी ।
सघन घन सम नयन चारु, माँ ! कृपा कल्याणी ।

Please send your mercy which is like wind, And shower the rain of wealth on this parched land, And quench the thirst of this little chataka(12), bird, And likewise, drive away a far my load of sins, Oh, darling of Narayana(13), By the glance from your cloud like dark eyes.

इष्टाविशिष्टमतयोऽपि यया दयार्द्र-
दृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते।
दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीप्तिरिष्टां
पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः ।।९।।

स्वर्ग पद दुर्लभ, सुलभ, माँ की कृपा शुभ दृष्टि से
पा सकें, इष्टा विशिष्टा, निमिष करुणा वृष्टि से,
दीप्तिमय शुभ दृष्टि दो, जो पूर्ण विकसित कमल सी,
सर्व मंगल काम्य दात्री, मंगला माँ ! विमल सी ।

गीर्देवतेति गरुडध्वजसुन्दरीति
शाकंभरीति शशिशेखरवल्लभेति ।
सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषु संस्थितायै
तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै ।।१०।।

ज्ञानेश्वरी हे महाकाली ! तुम गरुणध्वज की प्रिया,
सृष्टि स्थिति प्रलय काले, संस्थिता संसृति क्रिया ।
भगवती ! त्रैलोक्य पूज्या आदि माँ परमेश्वरी,
मम नमन उस जगत माँ को, साधना सिद्धेश्वरी ।

She is the goddess of Knowledge, She is the darling of Him who has Garuda[14] as flag, She is the power that causes of death at time of deluge, And she is the wife of Him who has the crescent, And she does the creation, upkeep and destruction at various times, And my salutations to this lady who is worshipped by all the worlds.

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै
रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणार्णवायै ।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै
पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥११॥

कर्मफलशुभ दायिनी, वेदोक्त माँ! कोटिक नमन,
रमणीय गुण युक्ता रति! हे शुभ्रा माँ! कोटिक नमन,
शतपत्र के कमलालये, हे शक्ति! माँ कोटिक नमन,
विष्णु प्रिया हरि वल्लभा, हे पुष्टि! माँ कोटिक नमन।

Salutations to you as Vedas which give rise to good actions, Salutation to you as Rathi[16] for giving the most beautiful qualities, Salutation to you as Shakthi, who lives in the hundred petalled lotus, And salutations to you who is Goddess of plenty, And is the consort of Purushottama

नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै
नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूम्यै ।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै
नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै ॥१२॥

कमल की कांति है कमला, कान्ति माँ ! कोटिक नमन
भूमि और भू मातु भी, हे भूमि माँ ! कोटिक नमन
देवताओं से भी पूजित, श्रेय माँ ! कोटिक नमन
नन्द आत्मज वल्लभाये, आद्या माँ ! कोटिक नमन ।

Salutations to her who is as pretty. As the lotus in full bloom, Salutations to her who is born from ocean of milk, Salutation to the sister of nectar and the moon, Salutations to the consort of Narayana.

संपत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानविभवानि सरोरुहाक्षि ।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ।।१३।।

बहुल धन-संपत्ति दात्री, इन्द्रियों के सुख सभी,
हे सरोजाक्षी ! प्रदात्री, राज को साम्राज्य भी,
द्वन्द दुरितानि त्वरित, माँ लक्ष्मी ! सारे हरो,
हे ! मातु श्री वन्दन नमन, स्वीकार माँ मेरे करो ।

Giver of Wealth, giver of pleasures to all senses, Giver of the right go rule kingdoms, she who has lotus like eyes, she to whom Salutations remove all miseries fast, And my mother to you are my salutations.

यत्कटाक्षसमुपासनाविधिः
सेवकस्य सकलार्थसंपदः ।
संतनोति वचनाङ्गमानसै-
स्त्वां मुरारिहृदयेश्वरीं भजे ।।१४।।

जो कटाक्ष उपासना के, विधि विधान से युक्त हो,
श्री सम्पदा ऐश्वर्य धन से, भक्त वह संयुक्त हो,
कोटि वंदन नमन पुनि-पुनि, मन वचन और कर्म से,
श्री मुरारी की प्रिया श्री लक्ष्मी को, हिय मर्म से ।

He who worships your sidelong glances, Is blessed by all known wealth and prosperity, And so my salutations by word, thought and deed, To the queen of the heart of my Lord Murari.

सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतमांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ।।१५।।

पद्मिनी पद्मासिनी शुभ पद्म हस्ते पावनी,
धवल वस्त्रा शुभ सुरभित माल मलयज भावनी,
भगवती ! हरिवल्लभा मन मुदित आनंदित करे,
त्रिभुवन विभूति श्रीमयी वह माँ मुझे प्रमुदितकरे ।

She who sits on the Lotus, She who has lotus in her hands, She who is dressed in dazzling white, She who shines in garlands and sandal paste, The Goddess who is the consort of Hari, She who gladdens the mind, And she who confers prosperity on the three worlds, Be pleased to show compassion to me.

दिग्घस्तिभिः कनककुम्भमुखावसृष्ट-
स्ववीहिनीविमलचारुजलप्लुताङ्गीम् ।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष-
लोकाधिनाथगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ।।१६।।

कनक कुंभ से अष्ट कुंजर गंगाजल दिशि पावनी,
करें प्रक्षालन जो गंगा रमा हित स्वर्ग वाहिनी,
प्रातर्नमामि जगत जननी श्रीधर गृहस्वामिनी,
जलधि तनया, अमिय दात्री, लक्ष्मी स्वस्ति पद्मिनी ।

Those eight elephants from all the diverse directions, Pour from out from golden vassels, The water from the Ganga[23] which flows in heaven, For your holy purify-

ing bath, And my salutations in the mom to you, Who is the mother of all worlds, And who is the daughter of the ocean which gave nectar.

कमले कमलाक्षवल्लभे त्वं
करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः ।
अवलोकय मामकिञ्चनानां
प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ।।१७।।

कमल नयनं वल्लभे, हे ! कमल, करुणामयी,
अवलोक मेरी ओर किंचित, मातु श्री ममतामयी ।
मैं दीन से भी दीन माँ ! तेरी दया का पात्र हूँ,
अति-अति प्रथम करना दया माँ ! दीन हूँ अति आर्त हूँ।

She who is the Lotus, She who is the consort, Of the Lord with Lotus like eyes, She who has glances filled with mercy, Please turn your glance on me, whi is the poorest among the poor, And firts make me the vessel, To receive your pity and compassion.

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमीभिरन्वहं
त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम् ।
गुणाधिका गुरुतरभाग्यभाजिनो
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः।।१८।।

He Who recites these prayers daily, On her who is personoification of Vedas, On Her who is the mother of the three worlds, On her who is Goddess Rema, Will be blessed without doubt, With all good graceful qualities, With all the great fortunes that one can get, And would live in the world, With great recognition from even the learned.

जगदीश्वरी ब्रह्माण्ड की रक्षा नियंत्रण कर रहीं,
कल्याण रूपा कमल नयना सृष्टि संचालक मही
दारिद्रय भय से आप्त हिय शरण में हूँ आपकी
दया दृष्टि अनवरत माँ ! चाह तेरे प्रताप की ।
वेदस्वरूपा भगवती का ध्यान हिय से नित करे
वही त्रिभुवन श्रीमयी माँ लक्ष्मी प्रमुदित करे
भाग्य श्री ऐश्वर्य सद्गुण ज्ञान निश्चय ही मिले
ज्ञानियों से मान, भव वैभव,
श्री कृपा माँ ! की मिले, श्री कृपा माँ ! की मिले ।



अनात्मश्रीविगर्हणप्रकरणम्

लब्धा विद्या राजमान्या ततः किं
प्राप्ता संपत्प्राभवाढ्या ततः किम् ।
भुक्ता नारी सुन्दराङ्गी ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥१॥

मिले ज्ञान सम्मान भी- तो क्या ?
मिले प्रचुर धन-धान्य भी- तो क्या ?
नारी सुख, लावण्य भी- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he has got education which is honored by kings? What if he has got wealth and great honour? What if he has enjoyed a woman with pretty form? If he is not aware of the knowledge of his own self.

केयूराद्यैर्भूषितो वा ततः किं
कौशेयाद्यैरावृतो वा ततः किम् ।
तृप्तो मृष्टान्नादिना वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।२।।

पहने स्वर्ण आभूषण- तो क्या ?
रेशम के परिधान भी- तो क्या ?
तृप्त, सुस्वादु भोजन- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he wears ornaments like the golden bangles? What if he has got dressed himself in silken cloths? What if he was satisfied by well prepared feast? If he is not aware of the knowledge of his own self.

दृष्टा नाना चारुदेशास्ततः किं
पुष्टाश्श्लेष्टा बन्धुवर्गास्ततः किम् ।
नष्टं दारिद्र्यादिदुःखं ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।३।।

भ्रमण देश-देशांतर- तो क्या ?
बहुल बंधु श्री बांधव- तो क्या ?
दुःख-दारिद्रय विनाशा- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he has visited several pretty countries? What if he has many well nourished relatives? What if he has lost the sorrow of poverty? If he is not aware of the knowledge of his own self.

स्नातस्तीर्थे जह्नुजादौ ततः किं
दानं दत्तं द्व्यष्टसंख्यं ततः किम् ।
जप्ता मन्त्राः कोटिशो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।४।।

पावन गंग नहाए- तो क्या ?
बहुल दिए उपहार भी- तो क्या ?
कोटि भजन गाये भी- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he has taken bath in sacred waters like Ganga? What if he has given gifts of 16 kinds several times? What if he has chanted billions of times the sacred chants? If he is not aware of the knowledge of his own self.

गोत्रं सम्यग्भूषितं वा ततः किं
गोत्रं भस्माच्छादितं वा ततः किम् ।
रुद्राक्षादिः सद्धृतो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥५॥

कुनबा भूषन भूषित- तो क्या ?
अथवा भस्म आलेपित-´ तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if all his clan members are well ornamented? What if his body has been fully applied with ash? What if he wears sacred beads like Rudraksha? If he is not aware of the knowledge of his own self.

अन्नैर्विप्रास्तर्पिता वा ततः किं
यज्ञैर्देवास्तोषिता वा ततः किम् ।
कीर्त्या व्याप्ताः सर्वलोकास्ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥६॥

ब्राह्मण भोज कराये- तो क्या ?
हर्षित देव यज्ञ से- तो क्या ?
कीर्ति विश्व गाये भी- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he has satisfied with food learned Brahmins? What if he has made devas happy by Yagnas? What if his fame has spread all over the world, If he is not aware of the knowledge of his own self.

कायः क्लिष्टश्चोपवासैस्ततः किं
लब्धाः पुत्राः स्वीयपत्न्यास्ततः किम् ।
प्राणायामः साधितो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।७।।

काया क्लिष्टा, भूखे- तो क्या ?
लब्ध पुत्र पत्नी से- तो क्या ?
प्राणायाम सिद्ध भी- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he practiced starvation punishing his body? What if he got a son through his own sweet wife? What if he has mastered the technique of Pranayama? If he is not aware of the knowledge of his own self.

युद्धे शत्रुर्निर्जितो वा ततः किं
भूयो मित्रैः पूरितो वा ततः किम् ।
योगैः प्राप्ताः सिद्धयो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥८॥

युद्धे शत्रु विजित भी- तो क्या ?
मित्र प्रदत्त मित्र बल- तो क्या ?
अद्भुत सिद्ध योग बल- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he won over all his enemies in battle, What if he has added his strength through new friends? What if he has attained occult powers through Yoga? If he is not aware of the knowledge of his own self.

अब्धिः पद्भ्यां लङ्घितो वा ततः किं
वायुः कुम्भे स्थापितो वा ततः किम् ।
मेरुः पाणावुद्धृतो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥९॥

जलधि पार, पैरों से- तो क्या ?
वायु कुम्भे स्थिर- तो क्या ?
मेरु गिरि निज हाथ में- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he has crossed the ocean by foot? What if he has able to retain his breath ? What if he holds the Mount Meru in his hand? If he is not aware of the knowledge of his own self.

क्ष्वेलः पीतो दुग्धवद्वा ततः किं
वह्निर्जग्धो लाजवद्वा ततः किम् ।
प्राप्ताश्चारः पक्षिवत्खे ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।१०।।

पय समान विष पान भी- तो क्या ?
अनल खाए, अक्षत सम- तो क्या ?
खग सम गगन गमन भी- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he has drunk poison , just like milk? What if he has eaten fire like popped rice? What if he moves in the sky similar to a bird? If he is not aware of the knowledge of his own self.

बद्धाः सम्यक्पावकाद्यास्ततः किं
साक्षाद्विद्धा लोहवर्यास्ततः किम् ।
लब्धो निक्षेपो ह्यञ्जनाद्यैस्ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।११।।

अग्नि नियंत्रण शक्ति- तो क्या ?
धातु कठोर तोड़ दे- तो क्या ?
भू गर्भित निधि ज्ञान हो- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन, कौन प्रयोजन ?

What if he ties and keeps fire under control? What if he is able to pierce hard metals? What if he is able to locate treasures using collyrium? If he is not aware of the knowledge of his own self.

भूपेन्द्रत्वं प्राप्तमुर्व्यां ततः किं
देवेन्द्रत्वं संभृतं वा ततः किम् ।
मुण्डीन्द्रत्वं चोपलब्धं ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।१२।।

सकल भूमि का भूपति- तो क्या ?
सब देवों का स्वामी- तो क्या ?
ऋषियों में ब्रह्मर्षि- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-ज्ञान बिन कौन प्रयोजन ?

What if he secures the kingship of the world? What if he gets the lordship over all devas? What if he becomes the chief among the sages? If he is not aware of the knowledge of his own self.

मन्त्रैः सर्वः स्तम्भितो वा ततः किं
बाणैर्लक्ष्यो भेदितो वा ततः किम् ।
कालज्ञानं चापि लब्धं ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।१३।।

मन्त्र शक्ति का स्वामी- तो क्या ?
लक्ष्य भेद की क्षमता- तो क्या ?
हो त्रिकाल दर्शी भी- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्मतत्व बिन कौन प्रयोजन ?

What if he is able to control everything through chants? What if he is able to hit accurately his aim? What if he is able to know , past, present and future? If he is not aware of the knowledge of his own self.

कामातङ्कः खण्डितो वा ततः किं
कोपावेशः कुण्ठितो वा ततः किम् ।
लोभाश्लेषो वर्जितो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ॥१४॥

सुख दुःख सहन की क्षमता- तो क्या ?
शमन-दमन करे क्रोध भी- तो क्या ?
लालच लोभ हीन भी- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-तत्व बिन कौन प्रयोजन ?

What if he is able to cut passion and worries? What if he is able to blunt his anger? What if he is able to keep away the embrace of avarice? If he is not aware of the knowledge of his own self.

मोहध्वान्तः पेषितो वा ततः किं
जातो भूमौ निर्मदो वा ततः किम् ।
मात्सर्यार्तिर्मीलिता वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत् ।।१५।।

मोहद्वन्द निर्द्वन्द भी- तो क्या ?
अहम्-अहंता हीन भी- तो क्या ?
और ईर्ष्या हीन भी- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्मतत्व बिन कौन प्रयोजन ?

What if he is able to crush the gloom of delusion? What if he is able to be completely devoid of all his pride? What if he is not affected by jealousy? If he is not aware of the knowledge of his own self.

धातुर्लोकः साधितो वा ततः किं
विष्णोर्लोको वीक्षितो वा ततः किम् ।
शंभोर्लोकः शासितो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत ।।१६।।

ब्रह्म लोक का स्वामी- तो क्या ?
विष्णु लोक भी देखा- तो क्या ?
शिवलोक का शासक- तो क्या ?
जग के प्रेय-श्रेय भी- तो क्या ?
अर्थहीन सब, व्यर्थ संयोजन,
आत्म-तत्व बिन कौन प्रयोजन ?

What if he is acquired the world of Brahma? What if he has seen the world of Vishnu? What if he ruled over the world of Shiva? If he is not aware of the knowledge of his own self.

यस्येदं हृदये सम्यगनात्मश्रीविगर्हणम् ।
सदोदेति स एवात्मसाक्षात्कारस्य भाजनम् ।।१७।।

आत्म-तत्व के जो जिज्ञासु,
आत्म-तत्व हित विकल पिपासु,
आत्म-तत्त्व के वे अधिकारी,
ईहा हीन, शुद्ध अविकारी ।

Any one whose heart always thinks, About the realization of the self. Is the only one fit for realization of the self,

अन्ये तु मायिकजगद्भ्रान्तिव्यामोहमोहिताः ।
न तेषां जायते क्वापि स्वात्मसाक्षात्कृतिर्भुवि ॥१८॥

अन्य कामना युक्त जो जना,
मोहित, आत्म-तत्व समुझत ना,
तत्व-ज्ञान तिन हिया असंभव,
तत्त्व-ज्ञान तिन हित जो तद्भव ।

For others are in a stupor of desire, And do not realize this world, And to them the thought of, Self realization never occurs.



दृग्दृश्यविवेक

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम् ।
दृश्याः धीवृत्तयस्साक्षी दृगेव न तु दृश्यते ।।१।।

रूप दृश्य और नेत्र हैं दृष्टा, किन्तु नेत्र मन दृष्टि से दृष्टा ।
मन ही वास्तविक साक्षी दृष्टा, मन से ही सकल वृत्तियाँ दृष्टा।।१।।

The form is perceived and the eye is its perceiver. The eye is perceived and the mind its perceiver. The mind with its modifications is perceived and the witness is verily the perceiver, but it is not perceived.

नीलपीतस्थूलसूक्ष्म ह्रस्वदीर्घादि भेदतः ।
नानाविधानि रूपाणि पश्येल्लोचनमेकधा ।।२।।

साक्षी बनकर आँख हमारी, विविध रूप देखत संसारी ।
नील-पीत, सूक्ष्म-स्थूला, देखत दीर्घ व ह्रस्व समूला ।।२।।

The forms appear as various on account of such

distinctions as blue, yellow, gross, subtle, short, long etc. The eye, on the other hand, sees them, itself remaining one and the same.

आन्ध्यमान्द्यपटुत्वेषु नेत्रधर्मेषु चैकधा ।
संकल्पयेन्मनः श्रोत त्वगादौ योज्यतामिदम् ।।३।।

मंद तीक्ष्ण, अंधापन दृष्टि, नेत्र धर्म, अंतर्मन सृष्टि ।
कर्ण, त्वचा के विषय भी ऐसे, अंतर्मन जानत है जैसे ।।३।।

Such characterristics of the eye as blindness, sharpness or dullness, the mind is able to cognize because it is a unity. This also applies to the ear, skin etc.

कामः संकल्पसंदेहौ श्रद्धाऽश्रद्धे धृतीतरे ।
ह्रीर्धीर्भीरित्येवमादीन् भासयत्येकधा चितिः ।।४।।

धैर्य कामना लज्जा श्रद्धा, भय संकल्प संदेह अश्रद्धा ।
विविध वृत्तियों की चेतनता, को साक्षी एक मन ही करता ।।४।।

consciousness illumines desire, determination and doubt, belief and non belief, constancy and its opposite, modesty, understanding, fear and other, because it is a unity.

नोदेति नास्तमेत्येषा न वृद्धिं याति न क्षयम् ।
स्वयं विभात्यथान्यानि भासयेत् साधनं विना ।।५।।

साक्षी चेतना स्वयं प्रकाशित, बिना अन्य साधन उद्भासित ।
उदय अस्त, वृद्धि क्षय हीना, अन्य समस्त को ज्योतित कीना ।।५।।

This consciousness does neither rise nor set. It does not increase; nor does it suffer decay. Being self-luminous, it illumines everything else without any other aid.

चिच्छायावेशतो बुद्धौ भानं धीस्तु द्विधा स्थिता ।
एकाहंकृतिरन्या स्यात् अन्तःकरणरूपिणी ।।६।।

जब जड़ बुद्धि चेतन होई, चेतनता प्रतिबिंबित होई ।
तब बुद्धि दो वृत्ति कीना, अहम् व अन्तः वृत्ति प्रवीणा ।।६।।

buddhi appears to possess luminosity on account of the reflection of Consciousness in it. Intelligence is of two kinds. One is designated egoity, the other as mind.

छायाहंकारयोरैक्यं तप्तायःपिण्डवन्मतम् ।
तदहंकारतादात्म्यात् देहश्चेतनतामगात् ।।७।।

ऐक्य अहम् चित बिम्ब का, अनल तप्त जस लोह ।
देह अहं तादात्म्य से, चेतन हो तस देह ।।७।।

In the opinion of the wise, the identity of the reflection and of ego is like the identity of the fire and the iron ball. The body having been identified with the ego passed for a conscious entity.

अहंकारस्य तादात्म्य चिच्छायादेहसाक्षिभिः ।
सहजं कर्मजं भ्रान्ति जन्यं च त्रिविधं क्रमात् ।।८।।

देह साक्षी चितबिम्ब से, तदाकार अहंकार ।
कर्मज सहज व भ्रान्तिजन्य, ये हैं तीन प्रकार ।।८।।

The identification of the ego with the reflection of consciousness, the body and the witness are of three kinds, namely, natural, due to past karma, and due to ignorance, respectively.

सम्बन्धिनोः सतोर्नास्ति निवृत्तिः सहजस्य तु ।
कर्मक्षयात् प्रबोधाच्च निवर्तेते क्रमादुभे ।।९।।

अहम् चित्त गहरा सम्बन्धा, निवृत्ति हीन अति सहज प्रबन्धा ।
किन्तु निःशेष शेष जो दोई, करम विपाक प्रबोध सो होई ।।९।।

The mutual identification of the ego and the reflection of Consciousness, which is natural, does not cease so long as they are taken to be real. The other two identification disappear after the wearing out of the result o karma and the attainment of the knowledge of the highest Reality respectively.

अहंकारलये सुप्तौ भवेद् देहोऽप्यचेतनः ।
अहंकारविकासार्धः स्वप्नः सर्वस्तु जागरः ।।१०।।

पूर्ण विलय जब अहम् का होई, लक्षित सुप्त अवस्था सोई ।
अर्ध विकासा स्वप्नावस्था, पूर्ण विकासा जागृतवस्था ।।१०।।

In the state of deep sleep, when ego disappears the body also becomes unconscious. The state in which there is the half manifestation of the ego is called the dream state, and the full manifestation of the ego is the state of waking.

अन्तःकरणवृत्तिश्च चितिच्छायैक्यमागताः ।
वासनाः कल्पयेत् स्वप्ने बोधेऽक्षैर्विषयान्बहिः ।।११।।

अंतःकरण बुद्धि की वृत्ति, चितिच्छायै ऐक्य प्रवृत्ति ।
स्वप्न करे संकल्पन सृष्टि, जागृत बाह्य विषयन दृष्टि ।।११।।

The inner organ which in itself but a modification

identifying itself with the reflection of Consciousness imagines ideas in the dream. And the same inner organ imagines objects external to itself in the waking state with respect to the sense-organs.

मनोऽहंकृत्युपादानं लिंगमेकं जडात्मकम् ।
अवस्थात्रयमन्वेति जायते म्रियते तथा ।।१२।।

अहंकार और मन संयुक्ता, लिंग-देह जड़ता से युक्ता ।
प्राप्त अवस्था त्रय को सोई, पुनि-पुनि जनम मरण तब होई।।१२।।

The subtle body which is the material cause of the mind and egoism is one and of the nature of in sentiency. It moves in the three states and if born and it dies.

शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृत्तिरूपकम् ।
विक्षेपशक्तिर्लिंगादि ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत् ।।१३।।

अंतःकरण वृत्ति चिच्छाया, ऐक्य हो स्वप्न का जगत रचाया ।
जस हो वासना तस हो सपना, बहिर्जगत की भी तस रचना।।१३।।

Two powers, undoubtedly, are predicated of Maya, viz., those of projecting are veiling. The projecting power created everything from the subtle body to the gross universe.

सृष्टिर्नाम ब्रह्मरूपे सच्चिदानन्दवस्तुनि ।
अब्धौ फेनादिवत् सर्व नामरूपप्रसारणा ।।१४।।

सागर में जस फेन बुदबुदे, सत चित मय तस मन आनंदे ।
ब्रह्म एक बहु भाषत दृष्टि, रूप-नाम को कहत हैं सृष्टि ।।१४।।

The manifesting of all names and forms in the entity which is Existence-Consciousness-Bliss and which is the same as Brahman, like the foams etc. In the ocean, if known as creation.

अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्मसर्गयोः ।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम् ।।१५।।

अंदर दृष्टा दृश्य को भेदा, बाहर ब्रह्म व सृष्टि विभेदा ।
यही आवरण शक्ति अपरा, यहि कारण संसारा सगरा ।।१५।।

The other power conceals the distinction between the perceiver and the perceived objects which are cognized within the body as well as the distinction between Brahman and the phenomenal universe which is perceived outside. This power is the couse of the phenomenal universe.

साक्षिणः पुरतो भाति लिंगं देहेन संयुतम् ।
चितिच्छायासमावेशात् जीवः स्याद् व्यावहारिकः ।।१६।।

जो साक्षी के अति निकट, चितिच्छाया युक्त ।
जिस कारण जीवंत को, जीव का शब्द प्रयुक्त ।।१६।।

The subtle body which exists in close proximity to the witness identifying itself with gross body becomes the embodied empirical self, on account of its being affected by the reflection of Consciousness.

अस्य जीवत्वमारोपात् साक्षिण्यप्यवभासते ।
आवृत्तौ तु विनष्टायां भेदे भातेऽपयाति तत् ।।१७।।

साक्षी को ही जीव सा, देखत है बिन ज्ञान ।
मिटत आवरण शक्ति जब, मिलत यथावत ज्ञान ।।१७।।

The character of an embodies self appear through false superimpasition in the Sakshi also. With the disappearance of the veiling power, the distinction between the seer and the object becomes clear and with it the jiva character of the Sakshi disappears.

तथा सर्गब्रह्मणोश्च भेदमावृत्य तिष्ठति ।
या शक्तिस्तद्वशाद् ब्रह्म विकृतत्वेन भासते ।।१८।।

यथा ब्रह्म और सृष्टि पृथकता, माया आवृत सत्य न दिखता ।
भ्रमित चित्त कब ब्रह्म सुझाई, मायावश अस भ्रम भरमाई ।।१८।।

Similarly Brahman. through the influence of the power that conceals the distinction between it and the phenomenal universe, appears as endowed with the attributed of change.

अत्राप्यावृत्तिनाशेन विभाति ब्रह्मसर्गयोः ।
भेदस्तयोर्विकारः स्यात् सर्गे न ब्रह्मणि क्वचित् ।।१९।।

मिटत आवरण तथ्य उजागर, सृष्टि और सृष्टा को अंतर ।
सकल विकारा सृष्टि पसारा, बिनु विकार एक ब्रह्म अपारा ।।१९।।

In this case also. the distinction between Brahman and the phenomenal universe becomes clear with the disappearance of the veiling power. Therefore change is perceibed in the phenomenal universe, but never in Brahman.

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम् ।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।।२०।।

अस्ति भाति प्रिय नाम और रूप पांच है अंश ।
प्रथम तीन तो ब्रह्ममय, शेष दो माया अंश ।।२०।।

Every entity has five characteristics, viz., existence, effulgence, lovability, form and name. Of these, the first

three are reflection of Brahman, and the next two to the creation.

खं वायु अग्निजलोर्वीषु देवतिर्यक् नरादिषु ।
अभिन्नाः सच्चिदानन्दा भिद्यते रूपनामनी ।।२१।।

नभ,जल,अनल,देव,भू,पक्षी, मानव ब्रह्म बृहत समकक्षी ।
तत्व सच्चिदानंद अभिन्ना, नाम रूप सों भासत भिन्ना ।।२१।।

The attributes of Existence, Consciousness and Bliss are equally present in the space, air, fire, water and earth as well as in deities, animals and men etc. Names and forms alone make one differ from the other.

उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्दतत्परः ।
समाधिं सर्वदा कुर्याद् हृदये वाऽथवा बहिः ।।२२।।

नाम रूप तो सार विहीना, सार ब्रह्म हिय सुमिरन कीना ।
एक सच्चिदानंद को सुमिरे, अंतर बाहर कभी न बिसरे ।।२२।।

Having become indifferent to name and form and being devoted to Sac-child-ananda, aspects, one should always practice samadhi either within the heart or outside.

सविकल्पो निर्विकल्पः समाधिर्द्विविधो हृदि ।
दृश्यशब्दानुवेधेन सविकल्पः पुनर्द्विधा ।। २३।।

निर्विकल्प, सविकल्प ये, दो समाधि के रूप ।
दृश्य शब्द सम्बन्ध से, दो सविकल्प सरूप ।।२३।।

Two kinds of Samadhi to be practised in the heart are know as savikalpa and Nirvikalpa. Savikalpa-Samadhi is again divided into two classes, according to its association with a cognizable objects or a sciptural word.

कामाद्याश्चित्तगा दृश्याः तत्साक्षित्वेन चेतनम् ।
ध्यायेद् दृश्यानुविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ।।२४।।

दृश्य कामादि वृतियाँ, साक्षी बनकर ध्यान ।
सविकल्प दृश्यानुविद, यही समाधि विधान ।।२४।।

See the desires etc as objects of perception, and see yourself, the consciousness, as their seer. When we deeply meditate on these factd then we glide into an quiet yet awareful state which is called dryshya prompted Savikalpa-Samadhi, facilitated by seer-seen viveka.

असंगः सच्चिदानन्दः स्वप्रभो द्वैतवर्जितः ।
अस्मीति शब्दविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ।।२५।।

अद्वय ब्रह्म असंग मैं, एक सच्चिदानंद ।
सविकल्प शब्दानुविद, यही समाधि आनंद ।।२५।।

Using the scriptural pointers as : I am Existence-Comsciousness-Bliss, unattached, selfluminous and free from duality etc., one should go deep into the truth of seer, and abide in that Self. This is known as the Savikalpa-Samadhi facilitated by scriptural words.

स्वानूभूतिरसावेशाद् दृश्यशब्दावुपेक्ष्य तु ।
निर्विकल्पस्समाधिस्स्यात् निवातस्थित दीपवत् ।।२६।।

दृश्य उपेक्षित शब्द भी, स्वानुभूति रसलीन ।
निर्विकल्प कूटस्थ चित, दीप वात जस हीँन ।।२६।।

The Nirvikalpa-Samadhi is that in which the mind becomes steady like the light kept in a place free from wind and in which the student becomes indifferent to both ocjects and words on account of his complete absorption in the bliss of the realization of the Self.

हृदीव बाह्यदेशेऽपि यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि ।
समाधिराद्यस्सन्मात्रात् नामरूपपृथक्कृतिः ।।२७।।

हृदय बाह्य दोनों जगह, जस कोई वस्तु एक ।
नाम रूप नहिं सत्य यह, प्रथम समाधि विवेक ।।२७।।

Like the samadhi prompted by drg-dryshya, one should now practice samadhi using any external objects. Here the first step is to discriminate between names & forms and pure existence.

अखण्डैकरसं वस्तु सच्चिदानन्द लक्षणम् ।
इत्यविच्छिन्न चिन्तेयं समाधिर्मध्यमो भवेत् ।।२८।।

एकरस ब्रह्म अखंड है, सत्य आनंद स्वरूप ।
सतत् महत चिंतन यही, मध्य समाधि रूप ।।२८।।

The entity which is always of the same nature and unlimited and which is characterized by Exixtence- Consciousness Bliss, is verily Brahman. Such uninterrupted reflection is called the intermediate absorption, that is the Savikalpa-Samadhi associated with scriptural word.

स्तब्धीभावो रसास्वादात् तृतीयं पूर्ववन्मतः ।
एतैस्समाधिभिः षड्भिः नयेत्कालं निरन्तरम् ।।२९।।

स्वनंदानुभूति से, निर्विकल्प हो सिद्ध ।
अथ समाधि छः भांति से, सतत ध्यान हो सिद्ध ।।२९।।

The insensibility of the mind as before, on account of the experience of Bliss, is designated as the third kind of Samadhi (Nirvikalpa). The practitioner should uninterruptedly spend his time in these si> kinds of Samadhi.

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ।।३०।।

मिटे दह अभिमान जब, हो परब्रह्म का ज्ञान ।
यत्र-यत्र मन का गमन, तत्र समाधि जान ।।३०।।

With the disappearance of the attachment to the body and with the realization of the Supreme Self, to whatever object the mind is directed, one effortlessly revels in Samadhi.

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।३१।।

दिव्य तत्व दर्शन महत, और हो मायातीत ।
हृदय ग्रंथि अज्ञान सब, कर्म विपाक प्रतीत ।।३१।।

By beholding Him who is high and low, the fetters of the heart are broken, all doubts are solved and all his karmas wear away.





डॉ. मृदुल कीर्ति

जन्म 7 अक्तूबर 1951 ई.

सनातन भारतीय मूल्यों के कालजयी वाहक, भारतीय संस्कृति के मूल स्तम्भ, महाग्रंथ वेदों, उपनि
भगवद्गीता, पातंजलि योग दर्शन आदि संस्कृत में होने के कारण और भाषा की क्लिष्टता के कारण,
मानस की रुचि को नहीं जगा पाते अतः अंतस तक नहीं जा पाते । जन मानस के अंतस में, जनमानस
भाषा में ही प्रवेश मिलता है । यही कारण है कि बाल्मीकि की संस्कृत में लिखी रामायण प्रज्ञावान वर्ग
ही सीमित है, जबकि तुलसीकृत 'रामचरित मानस' जन मानस के हृदय में है । अतः कथ्य विषयों
सरल, सरस और सहज होना अनिवार्य ही है । इन मौलिक संस्कृत ग्रंथों की क्लिष्टता और गूढ़ता के
जन मानस में रुचि जगाने का महत्वपूर्ण प्रयास भर किया है । इन शाश्वत ग्रंथों का काव्यात्मक रूपांतर
इन ग्रंथों को सरल, सरस, सहज और गेय बनाया है । जो जन मानस में सहज ही आत्मसात हो स
पातंजलि योग दर्शन का काव्य रूपांतरण विश्व का सर्व प्रथम काव्यात्मक अनुवाद है ।
ईश्वरीय अनुकम्पा के सहारे मैं आज भी सतत, निरंतर इसी प्रवाह में प्रवाहित आँन निमग्नता को ही जीवन
धन्यता मानती हूँ क्योंकि यह वह विधा है जो कोई बाहरी शक्ति न तो करवा ही सकती है और न ही
हुए को रोक सकती है । क्योंकि यह कृपा साध्य है श्रम साध्य नहीं ।

जन्मस्थान — पूरनपुर, जिला - पीलीभीत, उत्तर प्रदेश, भारत ।

शिक्षा — शोध कार्य ; वेदों पर शोध कार्य । विषय- वेदों में राजनीतिक व्यवस्था-एक अध्ययन
राजनीतिक परिपेक्ष्य में एक विवेचनात्मक अध्ययन, जिसमें वैदिक स्वस्थ लोकतंत्र की पुष्टि जिसे आज
परिवेश में सामयिक सिद्ध करने की चेष्टा, जब हमारे नैतिक मूल्य स्वार्थ में खोते जा रहे हैं। एम
राजनीति विज्ञान, आगरा विश्वविद्यालय (भारत उत्तर प्रदेश) 1970, हिंदी में 'विशारद'-इलाहाबाद, उ

अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी, आदि —

विषय-आध्यात्मिक का सार उपनिषद् - न्यूयार्क-न्यू जर्सी अमेरिका- अगस्त 2000 में । तुलसी दास और उनके कृतित्व-फ्लोरिडा (अमेरि
आयोजित) अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में । विषय- वैराग्य संदीपनी और गीता-शीर्षक से जिसमें भारत की ओर से प्रतिनिधित्व के लिए भारत स
आई.सी.सी.आर. की ओर से निर्वाचित की गई । विषय- त्यक्तेन भुंजीथा-एक विवेचन । वाशिंगटन में आयोजित एक बहुराष्ट्रीय सम्मेल
अभिभाषण । विषय- ईशावास्य उपनिषद की समकालिक विवेचना । अमेरिका के अनेकों राज्यों में विश्व स्तरीय सम्मेलनों में सहभागि
विषय- गीता का कर्मयोग- इस विषय पर एमोरी विश्व विद्यालय में वार्ता (अटलांटा अमेरिका) सितम्बर 2000 । इन्साइक्लोपीडिया
हिंदुइज्म- के लगभग 700 पेपर का अवलोकन । अनेकों राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और आर्य समाजों द्वारा सम्मा
और अनेक पत्र-पत्रिकाओं, इ=पत्रिकाओं में लेखों और कविताओं का प्रकाशन सतत जारी है । आर्य लेखक कोष में नामांकित । सा
अकादमी में नामांकित । दूरदर्शन में साक्षात्कार-भारत के प्रमुख समाचार पत्र पत्रिकाओं में साक्षात्कार और लेखों का प्रकाशन । 29 अप्रैल
माननीय डॉ. कर्ण सिंह ने साहित्य अकादमी के सभागार में दो ग्रंथों- पतंजलि योग दर्शन का काव्यानुवाद (चौपाई छंद में) और अष्टावक्र
(गीतिका छंद में) विमोचन किया ।

प्रकाशित ग्रन्थ —

श्रीमद्भगवद्गीता का काव्यात्मक अनुवाद (ब्रजभाषा) में, (2001) । यह श्रीकृष्ण की जन्म स्थली मथुरा में बोली जाने वाली ब्रज भाषा
सवैया छंद में काव्य रूपांतरित सर्व प्रथम गीता है । इसका विमोचन प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा (2001) किया गया ।
सामवेद का हिन्दी पद्यानुवाद (1988) । यह चौपाई छंद में सामवेद का सर्व प्रथम पद्यात्मक रूपांतरण, मौलिकता के सदर्भ सहेजे हुए, पद्य
सौंदर्य समेटे हुए, क्लिष्टता से सरलता और सरसता के दिव्य रसामृत का अकिंचन प्रयास है । इस ग्रन्थ का विमोचन महा महिम राष्ट्रपति श्री
वेंकटरमण के द्वारा किया गया (27मई1988) । इस अनुवाद को संस्कृत साहित्य अकेडमी उत्तर प्रदेश द्वारा अनुवाद पुरस्कार से पुरस्
किया। ईशादी नौ उपनिषदों का काव्यात्मक अनुवाद (1996) । यह हरिगीतिका छंद में अनुवादित विश्व के सर्वप्रथम काव्यात्मक अनुवा
ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय और श्वेताश्वर उपनिषदों का अनुवाद है । इसका विमोचन महामहिम राष्ट्रपति श्री श
दयाल शर्मा द्वारा (1996) में हुआ । ईहातीत क्षण-दार्शनिक गद्य-काव्य (1991) एक आध्यात्मिक और दार्शनिक गद्य काव्य संग्रह
राज्यपाल श्री वीरेन्द्र वर्मा, श्री नेवूर (मारीशस के भारत में राजदूत) द्वारा विमोचन (1991) में किया गया। अष्टावक्र गीता-गीतिका छंद में क
रूपांतरण (2006) विश्व का सर्वप्रथम गेय शैली में काव्यानुवाद है । पातंजलि योग दर्शन-हिंदी व्याख्यात्मक काव्यानुवाद, विश्व का अति प्र
पतंजलि योग दर्शन का काव्य रूपांतरण, चौपाई छंद में अनुवादित और रामायण की तरह ही गेय जो गाया भी जा चुका है । पतंजलि योग द
के काव्यानुवाद की सीडी तैयार और उपलब्ध है । सम्पूर्ण वैदिक यज्ञ के मन्त्र काव्य में हरिगीतिका छंद में रूपांतरित । श्री आदि गुरु शंकरा
की प्रमुख प्रसिद्ध कृतियों का दोहे और चौपाई छंद में काव्य रूपांतरण- अपरोक्षानुभूति, आत्म-बोध, भज गोविन्दम, धन्याष्टकं, मनीषा पंच
आदि । श्री बल्लमाचार्य का-मधुराष्टकं काव्य रूपांतरित । 'विवेक चूड़ामणि'- दोहे छंद में प्रयासरत ।